ISSN 0972-5636

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 34 अंक 4 अप्रैल 2014

'भारतीय आधुनिक शिक्षा' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोध कर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे–शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएँ, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अत: ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक

राजरानी

अकादमिक संपादकीय समिति

रंजना अरोड़ा — मधूलिका एस पटेल

उषा शर्मा — अलका (जे.पी.एफ़.)

प्रकाशन प्रभाग के सदस्य

प्रभागाध्यक्ष — एन. के. गुप्ता

मुख्य संपादक — श्वेता उप्पल

मुख्य व्यापार प्रबंधक — गौतम गांगुली

मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) — अरुण चितकारा

संपादक — रेखा अग्रवाल

उत्पादन सहायक — प्रकाश वीर सिंह

आवरण

अमित कुमार

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्केरे हल्ली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : ₹ 50 वार्षिक : ₹ 200

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 34 | अंक 4 | अप्रैल 2014

इस अंक में

संपादकीय			3
नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन	–	ब्रजेश कुमार वर्मा	5
सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत उत्तर प्रदेश के रामपुर एवं पीलीभीत जिलों में समेकित शिक्षा पर तुलनात्मक अध्ययन	–	रविन्द्र सिंह वेंकटेश्वरलु	13
समावेशी शिक्षा के लिए व्यवसायियों का विकास	–	भारती	22
ज्ञान और मूल्य — मदरसा शिक्षा के संदर्भ में	–	सूफ़िया नाज़नीन	36
लघु, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाएँ तथा भाषा–नीति व बहुभाषिक शिक्षा	–	संजय कुमार सुमन	50
बच्चों की आवाज़ों में अभिकर्तृत्व की खोज— घर से दूर एक घर में	–	दीप्ति श्रीवास्तव शोभा	59
पर्यावरण शिक्षा — आवश्यकता एवं प्रारूप	–	रश्मि श्रीवास्तव	72
मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक का शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन	–	हंसराज पाल नीलम वर्मा आशा पाल	80
केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा संचालित विद्यालयों का समीक्षात्मक अध्ययन—उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जिले के संदर्भ में	–	राजेश कुमार श्रीवास्तव	93
देश में उच्च शिक्षा का मात्रात्मक, गुणात्मक विकास एवं निजीकरण	–	राजेश कुमार जसवाल	102

NATIONAL UNIVERSITY OF EDUCATIONAL PLANNING AND ADMINISTRATION (NUEPA)

(Declared by the GOI under Section 3 of the UGC Act, 1956)
17-B Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016 www.nuepa.org

ADMISSION NOTICE 2015-16

(i) M.Phil. Programme (ii) Ph.D. Programme (iii) Part-time Ph.D. Programme

The National University of Educational Planning and Administration (NUEPA), a Deemed University fully funded by Ministry of Human Resource Development, Government of India is engaged in capacity building and research in educational policy, planning and administration.

NUEPA offers M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes in educational policy, planning and administration from a broader inter-disciplinary social science perspective. The research programmes of NUEPA cover all levels and types of education from both national and international development perspectives. NUEPA invites applications from eligible candidates for admission to its M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes for the year 2015-16.

Fellowships

All candidates selected for the M.Phil. and Ph.D. (full-time) shall be offered NUEPA fellowship. The NET qualified candidates, who have been awarded Junior Research Fellowship by the UGC and who fulfil the required qualifications, are encouraged to apply. However, part-time Ph.D. candidates are not entitled for any fellowship.

Eligibility Criteria

Full-time Programmes

(a) A candidate seeking admission to the M.Phil. and Ph.D. programmes shall have a minimum of 55% marks (50% marks for SC/ST candidates and Persons with Disabilities) or its equivalent grade in Master's Degree in social sciences and allied disciplines from a recognized university. Candidates possessing Master's Degree in other areas may also be considered if he/she has teaching experience or experience of working in the area of educational policy, planning and administration. (b) A candidate seeking admission to Ph.D. programme shall have an M.Phil. degree in an area closely related to educational planning and administration and/or exceptionally brilliant academic record coupled with publications of high quality. (c) M.Phil. graduates of NUEPA will be eligible for admission to the Ph.D. Programme after due scrutiny by a Selection/Admission Committee, if they obtain a FGPA of 6 or above on the ten point scale.

Part-time Programme

A candidate seeking admission to Part-time Ph.D. programme is required to meet the following criteria: (i) Should possess the educational qualifications as mentioned in Para (a) above; (ii) Currently, should be in full-time employment; (iii) Should be a senior level educational functionary with a minimum of five years work experience in teaching/research in educational policy, planning and administration.

It will be compulsory to attend one-year full-time course work by all part-time and full time candidates.

Mode of Selection

NUEPA will follow all mandatory provisions in the reservation policy of the Government of India. Admissions to M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes will be made purely on the basis of merit following the prescribed criteria of the University.

The University reserves the right to decide the number of seats to be filled in the year 2015-16; the criteria for screening of applications; and the selection procedure of candidates for admission to its M.Phil. and Ph.D. programmes. The mode of selection of candidates will be as under:

Initial short-listing of applications will be carried out on the basis of relevance and quality of the brief write-up (in the prescribed format) in the proposed area of research to be submitted along with the application form. Short-listed candidates will be required to appear for a written test and those qualifying in written test will be subjected to personal interviews to assess their motivation and potential leading to final short-listing and preparation of panel of selected candidates, in order of merit.

Candidates must be possessing the eligibility qualification and submit marks statement at the time of written test on 20.06.2015.

How to Apply

Candidates may apply in the prescribed form for admission to M.Phil. and Ph.D. programmes of the University along with three copies of the brief write-up (in the prescribed format) on the proposed research topic of a contemporary issue within the broad framework of educational policy, planning and administration. For further details, please refer to the M.Phil.-Ph.D. Prospectus, 2015-16 of the University.

The application form and the Prospectus can be obtained from NUEPA by remitting a sum of ₹ 200/- (₹ 100/- for SC/ST candidates) by demand draft in favour of Registrar, NUEPA, payable at New Delhi if required by Post or purchased in person. The Prospectus can also be downloaded from our website: www.nuepa.org by making online payment of ₹ 200/- (₹ 100/- for SC/ST candidates) and attach the receipt/confirmation slip with the application at the time of submission to NUEPA.

Last Date of Applications

Application should reach the Registrar, NUEPA, 17-B, Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016 on or before **15 May 2015.** For further details, please visit our website www.nuepa.org

– Registrar

संपादकीय

हाल ही में ई.एफ़.ए. वैश्विक निगरानी रिपोर्ट 2013/14 पढ़ने का मौका मिला, जिसके आँकड़े बताते हैं कि 2015 तक हम वैश्विक शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगे, इसमें संदेह है। यद्यपि इसके लिए हर देश में प्रयास जारी हैं। हमारे देश में शिक्षा का अधिकार अधिनियम को लागू हुए चार वर्ष बीत चुके हैं। समाचार पत्रों में छपी खबरें, कुछ सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा किए गये सर्वेक्षणों के परिणाम चौंकाने वाले हैं, जो यह बताते हैं कि शिक्षा का अधिकार आज भी बहुत से बच्चों की पहुँच से बाहर है, विशेष रूप से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा। यह अधिनियम शिक्षा का हक कमज़ोर व पिछड़े वर्ग के बच्चों, बालिकाओं, अल्पसंख्यक समुदायों व विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को दिये जाने के लिए विशेष प्रयासों की माँग करता है। परंतु क्या हम पूर्ण रूप से ऐसा कर पाये हैं यह विश्लेषण व मनन का विषय है।

भारतीय आधुनिक शिक्षा का यह अंक इस बुनियादी अधिकार से जुड़े कुछ लेख प्रस्तुत कर रहा है। ब्रजेश कुमार 'वर्मा' का लेख बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक वर्ग के अभिभावकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक विवरण दर्शाता है। रविन्द्र सिंह और वेंकटेश्वरुलु का लेख उत्तर प्रदेश के दो जिलों में सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत समावेशी शिक्षा व्यवस्था की तुलना करते हुए इंगित करता है कि समावेशी कक्षायें विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अधिक लाभकारी हैं परंतु इसके लिए शिक्षकों की तैयारी पर विशेष ध्यान दिये जाने की ज़रूरत है। भारती द्वारा अनुवादित लेख भी समावेशी शिक्षा को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए शिक्षकों की पेशेवर तैयारी और निरंतर विकास की सिफ़ारिश करता है और इसके लिए शिक्षक-प्रशिक्षण में बदलाव पर ज़ोर देता है।

मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के बहुत से बच्चे आज भी मदरसों में शिक्षा प्राप्त करते हैं, सूफिया नाज़नीन के लेख में मुस्लिम विद्यार्थियों में नैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्य विकसित करने में ***मदरसा तालीम*** की भूमिका पर चर्चा की गई है।

बच्चों की मातृभाषा व स्कूल की भाषा में अंतर होने की वजह से आज भी बहुत से बच्चे या तो स्कूली शिक्षा से बाहर रहते हैं या बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। संजय कुमार सुमन ने अपने लेख में विश्लेषण किया है कि किस प्रकार हमारे देश में बहुत-सी स्थानीय, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाएँ लुप्त होती जा रही हैं। लेखक का मानना है कि यदि हम अल्पसंख्यक व आदिवासी समुदायों के सभी बच्चों को शिक्षित करने का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं तो स्कूली शिक्षा का माध्यम बच्चों की मातृ भाषा होनी चाहिए। साथ ही अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं के विकास के लिए ठोस प्रयास किये जाने चाहिए।

इस अंक में शिक्षा व्यवस्था से जुड़े कुछ अन्य लेख भी शामिल हैं। दीप्ति श्रीवास्तव और शोभा का शोधपरक लेख एक गैरसरकारी आवास में रहने वाले बच्चों की आवाज़ों के माध्यम से बचपन की संकल्पना की पड़ताल करता है और बताता है कि बच्चे स्वयं के कार्यों द्वारा अपने और दूसरों के बारे में एक निश्चित समझ का निर्माण करते हैं। रश्मि श्रीवास्तव का लेख पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता दोहराते हुए उसके क्रियान्वयन की व्याख्या करता है। हंसराज पाल, नीलम शर्मा और आशा पाल का लेख मध्यप्रदेश राज्य द्वारा निर्मित माध्यमिक स्तर की विज्ञान पाठ्यपुस्तक के विश्लेषणात्मक मूल्यांकन पर आधारित है। राजेश कुमार श्रीवास्तव ने अपने लेख में उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जिले में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त 11 विद्यालयों की कार्यप्रणाली की समीक्षा पेश की है। अंत में राजेश कुमार जसवाल का लेख आज के बदलते परिवेश के अनुरूप गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा की माँग को दोहराता है।

अकादमिक संपादकीय समिति

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

ब्रजेश कुमार वर्मा*

प्रस्तुत शोध पत्र में निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया है। अध्ययन हेतु शोधकर्ता ने वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। प्रदत्तों के संकलन हेतु स्वनिर्मित ''निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 प्रश्नावली'' को 120 के न्यादर्श पर प्रशासित किया गया। अध्ययन के परिणामस्वरूप ज्ञात हुआ कि निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति अल्पसंख्यक अभिभावकों की तुलना में अधिक सकारात्मक है। इस निष्पत्ति के पीछे यह कारण हो सकता है कि बहुसंख्यक वर्ग की साक्षरता दर का प्रतिशत अल्पसंख्यक वर्ग की साक्षरता दर के प्रतिशत से ज़्यादा है, अतः वे विभिन्न सरकारी योजनाओं व अधिनियमों के प्रति अधिक सकारात्मक मनोवृत्ति रखते हैं। अन्य निष्पत्ति में यह ज्ञात हुआ कि इस अधिनियम के प्रति पुरुष वर्ग के अभिभावक चाहे वे अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक, महिला वर्ग की अभिभावकों (अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक) की तुलना में अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं। इस परिणाम के पीछे कारण हो सकता है, कि महिलाओं पर पुरुषों की तुलना में अतिरिक्त परिवार एवं बच्चों की देखभाल का दायित्व होता है, जिससे वे इस अधिनियम के प्रति सक्रियता प्रदर्शित नहीं कर पाती हैं। सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्य को और बेहतर ढंग से प्राप्त करने के लिए सभी अभिभावकों, चाहे वे अल्पसंख्यक हों या बहुसंख्यक हों, को चाहिये कि वे इस अधिनियम के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करें तभी न केवल सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्य को बेहतर ढंग से प्राप्त किया जा सकेगा वरन् शिक्षा के अधिकार अधिनियम का कार्यान्वयन भी उचित ढंग से हो सकेगा।

*2/25, आवास विकास कालोनी, मैनपुरी (उ.प्र.)

प्रस्तावना

शिक्षित होना हर व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। पेस्टालॉजी ने भी इसी बात को कहा है ''शिक्षा हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।'' लेकिन यह तभी संभव है जब इसकी पहुँच समाज के सबसे निचले स्तर तक सुनिश्चित हो। 1 अप्रैल 2010 से पूरे भारत में जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009, 6-14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए लागू हो चुका है। विश्व में ऐसे कम ही देश हैं, जहाँ बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने की व्यवस्था लागू है। इस दृष्टि से यह अधिनियम भारत को प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की आधार भूमि उपलब्ध करा रहा है। इस अधिनियम में 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के हर एक बच्चे को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रावधान एवं उन प्रावधानों को पूर्ण करने के लिए कर्त्तव्य एवं दायित्व निर्धारित हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 1870 में ब्रिटेन ने अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित होने के उपरांत भारत में सर्वप्रथम प्रत्येक बच्चे को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की माँग ज्योतिबाफुले जी द्वारा 1882 में हंटर कमीशन से की गयी थी। 1906 में इम्पीरियल लेजिसलेटिव असेम्बली से श्री गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा भारतीय बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करने की माँग की गयी थी, किंतु उन्हें भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। 1937 में महात्मा गांधी जी ने वर्धा में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की बैठक में समस्त बच्चों के लिए सार्वभौमिक शिक्षा का प्रस्ताव रखा था किंतु वित्तीय संसाधनों के अभाव का कारण बताकर बच्चों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया था। 1948-49 में संविधान सभा के समक्ष भी यह प्रश्न उत्पन्न हुआ परंतु संविधान सभा की सलाहकार समिति ने इसे मौलिक अधिकार न मानते हुए नीति निर्देशक सिद्धांत की सूची में स्वीकार किया। नीति निर्देशक सिद्धांत के अनुच्छेद 45 के अनुसार– ''राज्य इस संविधान के लागू होने के 10 साल की अवधि में समस्त बच्चों के लिए जब तक कि वे 14 साल की आयु को प्राप्त नहीं कर लेते हैं, नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा।''

सभी बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा 1993 में दिए गए निर्णय में यह कहा गया कि ''शिक्षा के बिना जीवन का अधिकार अपूर्ण है और 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना राज्य का महत्वपूर्ण दायित्व है।'' इस निर्णय के पश्चात् 86वाँ संवैधानिक संशोधन, 2002 के अंतर्गत मूल अधिकारों में अनुच्छेद 21ए सम्मिलित किया गया जिसके अनुसार—''राज्य 6-14 वर्ष के आयु वर्ग वाले समस्त बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का, ऐसी रीति से जो राज्य विधि द्वारा अवधारित करे, उपबंध करेगा।'' इसके साथ ही संविधान के अनुच्छेद 45 के लिए निम्नलिखित अनुच्छेद स्थानापन्न किया ''राज्य समस्त बच्चों को जब तक कि वे अपनी 6 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते हैं, बचपन पूर्व सुरक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा।'' संविधान के अनुच्छेद 51-ए में धारा (जे) के बाद अग्रलिखित धारा जोड़ी गयी है –

धारा (के) ''यदि माता-पिता या संरक्षक हैं, 6 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग वाले अपने, यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें''

इसके परिणामस्वरूप प्रारंभिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार का दर्जा प्राप्त हुआ और समस्त बच्चों को यह अधिकार उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्न प्रारंभ हुए। इसी क्रम में वर्ष 2006 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम का एक मॉडल विधेयक विकसित किया गया जो 4 अगस्त 2009 को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के रूप में पारित हुआ तथा 27 अगस्त 2009 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित हुआ। अंततः भारत के समस्त बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कराने की यात्रा, लगभग एक शताब्दी के बाद 2010 में मंज़िल प्राप्त कर सकी और 1 अप्रैल 2010 से शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू हो गया है। शिक्षा का अधिकार अब 6 से 14 वर्ष तक के समस्त बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार है तथा राज्य सभी बच्चों को कक्षा 8 तक नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी है।

अधिनियम के प्रमुख प्रावधान

- 6-14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे के लिए नज़दीकी विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य एवं मुफ़्त होगी।
- इस उम्र के बच्चों से किसी भी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाएगा और न ही उन्हें किसी शुल्क अथवा खर्च की वजह से प्राथमिक शिक्षा लेने से रोका जा सकेगा।
- यदि 6 से अधिक उम्र का कोई भी बच्चा किन्हीं कारणवश विद्यालय नहीं जा पाता है तो, उसे शिक्षा के लिए, उसकी उम्र के अनुसार उचित कक्षा में प्रवेश दिलवाया जाएगा।
- इस अधिनियम के प्रावधानों को क्रियान्वित करने के लिए संबंधित सरकार तथा स्थानीय प्रशासन को यदि आवश्यक हुआ तो विद्यालय भी खोलना होगा।
- इस अधिनियम के तहत यदि किसी क्षेत्र में विद्यालय नहीं है तो वहाँ पर तीन वर्षों में विद्यालय का निर्माण करवाया जाना आवश्यक है।
- इस अधिनियम के प्रावधानों को अमल में लाने की ज़िम्मेदारी केंद्र तथा राज्य सरकार दोनों की है तथा इसके लिए होने वाले खर्च में भी इनकी समवर्ती ज़िम्मेदारी रहेगी।
- इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) को शैक्षिक पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रक्रिया के लिए अधिकृत किया है। इसका प्रमुख कार्य प्रारंभिक शिक्षा तथा इसके लिए आवश्यक पाठ्यक्रम का राष्ट्रीय स्तर पर विकास करना है।
- सरकारी विद्यालय तो नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करेंगे ही, निजी और विशेष श्रेणी वाले विद्यालयों को भी आर्थिक रूप से निर्बल समुदायों के बच्चों के लिए कक्षाओं में 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित करना होगा।
- किसी भी बच्चे को शारीरिक दंड नहीं दिया जाएगा या उसका मानसिक उत्पीड़न नहीं किया जाएगा।

- बच्चों के समझने की शक्ति और उसे उपयोग करने की योग्यता का व्यापक और सतत् मूल्यांकन किया जाएगा।
- किसी भी बच्चे को किसी कक्षा में रोका नहीं जाएगा तथा प्रारंभिक शिक्षा पूरी किए जाने तक निष्कासित नहीं किया जाएगा।
- प्रत्येक बच्चे की शिक्षा ग्रहण करने के सामर्थ्य का निर्धारण किया जाएगा और तदनुसार यथा अपेक्षित अतिरिक्त शिक्षण प्रदान किया जाएगा।
- बाल अनुकूल और बाल केंद्रित रीति में क्रियाकलापों, खोज और प्रकटीकरण द्वारा शिक्षण प्रदान किया जाएगा।

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 बच्चों तक माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा पहुँचाने की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण कदम है। इसका सर्वाधिक लाभ श्रमिकों के बच्चे, बाल मज़दूर, प्रवासी बच्चे, विशेष आवश्यकता वाले बच्चे या फिर जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषायी अथवा जेंडर कारकों की वजह से शिक्षा से वंचित बच्चों को मिलेगा और वे आरंभिक शिक्षा पूरी करके माध्यमिक शिक्षा में कदम रख सकेंगे।

इस अध्ययन में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009

इस अधिनियम में 6 से 14 वर्ष की आयु के हर एक बच्चे को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रावधान एवं उन प्रावधानों को पूर्ण करने के लिए कर्तव्य एवं दायित्व निर्धारित किए गए हैं।

अल्पसंख्यक अभिभावक

अल्पसंख्यक अभिभावकों से तात्पर्य मुस्लिम संप्रदाय के अभिभावकों से है।

बहुसंख्यक अभिभावक

बहुसंख्यक अभिभावकों से तात्पर्य हिंदू संप्रदाय के अभिभावकों से है।

अभिवृत्ति

अभिवृत्ति किसी विशिष्ट प्रकरण के प्रति व्यक्ति की प्रवृत्तियों, भावनाओं, पूर्वाग्रहों, पक्षपातों, पूर्व निर्मित अभिप्रायों, विचारों, भय, दबावों तथा मान्यताओं का कुल योग है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों एवं महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

3. नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति बहुसंख्यक पुरुष अभिभावकों एवं महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

अध्ययन का परिसीमांकन

1. प्रस्तुत अध्ययन में मैनपुरी जिले के सुल्तानगंज विकास खंड के अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों को लिया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में अल्पसंख्यक अभिभावकों से आशय मुस्लिम अभिभावकों से तथा बहुसंख्यक अभिभावकों से आशय हिंदू अभिभावकों से है।
3. प्रतिदर्श के रूप में 60 अल्पसंख्यक अभिभावकों तथा 60 बहुसंख्यक अभिभावकों का चयन किया गया है।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श- प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श के रूप में 60 अल्पसंख्यक अभिभावकों तथा 60 बहुसंख्यक अभिभावकों का चयन किया गया है। 60 अल्पसंख्यक अभिभावकों में 40 अभिभावक पुरुष हैं तथा 20 अभिभावक महिला हैं और 60 बहुसंख्यक अभिभावकों में 42 पुरुष अभिभावक हैं तथा 18 महिला अभिभावक हैं। न्यादर्श चयन के लिए विधि Stratified Random Sampling (SRS) का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक अभिभावकों एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता ने स्वनिर्मित प्रश्नावली का निर्माण किया है। इस प्रश्नावली में 30 प्रश्न हैं।

सांख्यिकीय विधियाँ- एकत्रित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी टेस्ट का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

शून्य परिकल्पना 1— नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक अभिभावकों एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 1

वर्ग	*N*	*M*	*S.D*	M_D	σ_D	*T*	*Df*	*सार्थकता स्तर 0.01 स्तर पर*
अल्पसंख्यक अभिभावक	60	35.10	5.80	4.07	1.38	2.94	118	सार्थक अंतर है।
बहुसंख्यक अभिभावक	60	39.17	7.03					

t तालिका में df = 118 देखने पर t का मान 0.01 स्तर पर 2.62 है जबकि प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिगणित t अनुपात का मान 2.94 प्राप्त हुआ जो 0.01 सार्थकता स्तर के मानों से अधिक है अत: शून्य परिकल्पना 1 ''नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक अभिभावकों एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है'' निरस्त होती है अर्थात् 99 प्रतिशत विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यक अभिभावकों तथा बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है अर्थात् अल्पसंख्यक अभिभावकों तथा बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति समान नहीं है।

शून्य परिकल्पना 2 नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के प्रति अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

t तालिका में df = 58 देखने पर t का मान 2.66 है जबकि प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिगणित t अनुपात का मान 5.76 प्राप्त हुआ जो 0.01 सार्थकता स्तर के मानों से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना 2 ''नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों एवं महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है'' निरस्त होती है अर्थात् 99 प्रतिशत विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है अर्थात् अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति समान नहीं है।

शून्य परिकल्पना 3 नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति बहुसंख्यक पुरुष अभिभावकों तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 2

वर्ग	*N*	*M*	*S.D*	M_D	σ_D	*t*	*df*	*सार्थकता स्तर 0.01 स्तर पर*
अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावक	40	36.7	3.95	9.8	1.7	5.76	58	सार्थक अंतर है।
अल्पसंख्यक महिला अभिभावक	20	26.9	6.96					

तालिका 3

वर्ग	*N*	*M*	*S.D*	M_D	σ_D	*t*	*df*	*सार्थकता स्तर 0.01 स्तर पर*
बहुसंख्यक पुरुष अभिभावक	42	42.16	5.78	9.99	1.4	7.13	58	सार्थक अंतर है।
बहुसंख्यक महिला अभिभावक	18	32.17	4.11					

t तालिका में df = 58 देखने पर t का मान 0.01 स्तर पर 2.66 है जबकि प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिगणित t अनुपात का मान 7.13 प्राप्त हुआ जो 0.01 सार्थकता स्तर के मानों से अधिक है अत: यह 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक अंतर है अत: शून्य परिकल्पना 3 ''नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति बहुसंख्यक पुरुष वर्ग के अभिभावकों एवं महिला वर्ग के अभिभावकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है'' निरस्त होती है, अर्थात् 99 प्रतिशत विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि बहुसंख्यक पुरुष अभिभावकों तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है अर्थात् पुरुष अभिभावकों तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति समान नहीं है।

निष्कर्ष

1. नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक अभिभावकों एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया और यह देखा गया कि बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति अल्पसंख्यक अभिभावकों की तुलना में अधिक सकारात्मक है।
2. नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों एवं महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया और यह देखा गया कि अल्पसंख्यक पुरुष अभिभावकों की अभिवृत्ति महिला अभिभावकों की तुलना में अधिक सकारात्मक है।
3. नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति बहुसंख्यक पुरुष अभिभावकों की अभिवृत्ति तथा महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया और यह देखा गया कि बहुसंख्यक पुरुष अभिभावकों की अभिवृत्ति महिला अभिभावकों की अभिवृत्ति से अधिक सकारात्मक है।

शैक्षिक निहितार्थ- अध्ययन के परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति विशेष की अभिवृत्ति उसके मनोभाव अथवा विश्वास को इंगित करती है।

अभिवृत्ति बताती है कि व्यक्ति क्या महसूस करता है अथवा उसके पूर्व विश्वास क्या हैं? यदि अभिभावक चाहें वे अल्पसंख्यक हों या फिर बहुसंख्यक हों, निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति रखेंगे तभी वे अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित कर सकेंगे और तभी सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्य ''सब पढ़ें सब बढ़ें'' को अधिक तत्परता से प्राप्त किया जा सकेगा।

यह शोध अध्ययन इंगित करता है कि इस अधिकार के बारे में अल्पसंख्यक समुदाय को और अधिक बताए जाने की आवश्यकता है। इसके अधिक प्रचार-प्रसार तथा जागरूकता के लिए और अधिक प्रयास किए जाने चाहिए क्योंकि सही और व्यापक जानकारी से भी दृष्टिकोणों में सुधार आता है जो कि दूरगामी होगा। इस प्रकार इस अधिनियम की सही जानकारी अभिभावकों और अध्यापकों की अभिवृत्ति में परिवर्तन का एक सही व सकारात्मक उपाय सिद्ध हो सकती है।

संदर्भ

डायट मैनपुरी. 2010. *संवाद, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 और निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के संदर्भ में शिक्षक हस्तपुस्तिका.* सर्व शिक्षा अभियान (उ.प्र.)

बुच, एम.बी. 1979. *सैकेंड सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन.* बड़ौदा सोसायटी फ़ॉर एजुकेशन रिसर्च एंड डेवलपमेंट

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 1991. *थर्ड एंड फोर्थ सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन.* नयी दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 1997. *फ़िफ्थ सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन.* नयी दिल्ली

सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत उत्तर प्रदेश के रामपुर एवं पीलीभीत जिलों में समेकित शिक्षा पर तुलनात्मक अध्ययन

रविन्द्र सिंह*
वेंकटेश्वरलु**

शिक्षा प्राप्त करना सभी बच्चों का अधिकार है तथा सभी को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। आज भारत में भी इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता। 6 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चों के लिए 86वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को एक मौलिक अधिकार घोषित कर दिया गया है। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए सर्व शिक्षा अभियान को एक मिशन के रूप में 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों को जीवन उपयोगी शिक्षा पर ज़ोर देने के साथ संतोषजनक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य भारत सरकार द्वारा रखा गया है। समावेशी शिक्षा के अंतर्गत होने वाले उपयुक्त सभी क्रियाकलापों का मुख्य उद्देश्य छात्रों के मन से हीनभावना को दूर कर उनमें सहनशीलता, सद्भावना, समानता एवं अनुशासन की भावना विकसित कर उनको पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बनाना है।

प्रस्तावना

सभी व्यक्तियों को अपने जीवन को बेहतर तरीके से जीने का अधिकार है, लेकिन दुनियाभर के बहुत सारे बच्चे इस अवसर के अभाव में ही जी रहे हैं, क्योंकि उन्हें प्राथमिक शिक्षा जैसे अनिवार्य मूलभूत अधिकार भी मुहैया नहीं कराये जा रहे हैं। भारत में बच्चों को साक्षर करने की दिशा में चलाये जा रहे कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप 94 प्रतिशत ग्रामीण बच्चों को उनके घर से एक किमी. की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय एवं तीन किमी. की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2012-13 के अनुसार, पूरे देश में 32 लाख विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान की गई है। इनमें से 28 लाख (86.27%) बच्चे स्कूलों में नामांकित हैं तथा एक लाख बारह हज़ार बच्चों को 23 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों द्वारा स्कूल रेडिनेस प्रोग्राम (School Readiness Programme) के माध्यम से कवर करने का संकल्प लिया गया है। भारत सरकार का लक्ष्य इस संख्या को 100% तक पहुँचाना है। इस लक्ष्य को पाना तभी संभव है जब देशभर के बच्चों को कम से कम

* *शोध छात्र,* एफ़ईएएस, एमजेपी रुहेलखंड यूनिवर्सिटी, बरेली (उ.प्र.)
** *प्रोफ़ेसर* (स्पेशल ऐजुकेशन), एसओई, इग्नू, नयी दिल्ली

प्राथमिक विद्यालय के माध्यम से उच्च स्तरीय स्कूली सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के द्वारा समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सभी बस्तियों में स्कूली शिक्षा सुविधाओं के साथ बच्चों के 100% नामांकन और प्रतिधारण का लक्ष्य रखा गया है। भारत सरकार ने सन् 2000 में शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए सर्व शिक्षा अभियान को एक मिशन के रूप में 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों के जीवन के लिए शिक्षा पर ज़ोर देने के साथ संतोषजनक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य को सन् 2015 तक सभी राज्यों के साथ साझेदारी में रखा गया है।

उत्तर प्रदेश में सर्व शिक्षा अभियान

सर्व शिक्षा अभियान सार्वभौमिक साक्षरता के प्रमुख सरोकारों और इसके कार्यान्वयन के लिए एक उत्साही पिच है। यह भारत के सर्वाधिक आबादी वाले राज्यों के साथ सभी राज्यों में अनिवार्य है। सर्व शिक्षा अभियान द्वारा भारत सरकार का प्रमुख शैक्षिक कार्यक्रम 192 करोड़ बच्चों को बुनियादी शिक्षा दिलाने का है। शिक्षा के लक्ष्य को पूरा करने के लिए उत्तर प्रदेश में 9570 नये प्राथमिक विद्यालयों और 13177 उच्च प्राथमिक विद्यालयों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है जबकि 4832 प्राथमिक और 1218 उच्च प्राथमिक विद्यालयों को पुनः निर्माण के अंतर्गत रखा गया है और 7338 नये शौचालय, 1,21,199 अतिरिक्त कक्षाओं की संख्या, 2 लाख अतिरिक्त शिक्षकों एवं पैरा-शिक्षकों की नियुक्ति तथा 1:66 प्रतिशत से 1:45 प्रतिशत के शिक्षक-छात्र अनुपात को नीचे लाया गया है। उत्तर प्रदेश सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा के स्तर को बढाने के लिए निम्नलिखित रूप से पूर्वी क्षेत्रों में- बहराइच, गोण्डा, बलरामपुर, हरदोई, कुशीनगर आदि और पश्चिमी क्षेत्रों में बरेली, एटा, पीलीभीत और रामपुर आदि तथा केंद्रीय क्षेत्र ललितपुर, बुंदेलखण्ड आदि जिलों को प्राथमिकता दी है।

रामपुर जिले में सर्व शिक्षा अभियान

रामपुर जिला प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में एक अत्यंत पिछड़ा क्षेत्र है। यहाँ मुस्लिम जनसंख्या अधिक होने के कारण शैक्षिक स्थिति भी अत्यंत पिछड़ी हुई है क्योंकि शिक्षकों की बहुत अधिक कमी है तथा आर्थिक स्थिति भी अत्यंत खराब है, जिसके कारण अधिक गरीबी है तथा बच्चों की पढ़ाई का स्तर भी काफ़ी गिरा हुआ है। रामपुर में सर्व शिक्षा अभियान सन् 2002 में शुरू हुआ था। उस समय पूरे जिले में 1272 स्कूल थे। कोई भी विशेष आवश्यकता वाला बच्चा स्कूल में नामांकित नहीं था और न ही कोई विशेष/संसाधन शिक्षक नियुक्त था।

रामपुर जिले में अल्पसंख्यकों की अधिकता के कारण शिक्षा का स्तर पूरे उत्तर प्रदेश में निम्नतम स्तर पर है। यूनिसेफ़ (United Nations Children's Educational Fund) द्वारा एक आह्वान कार्यक्रम सत्र 2010-11 में शुरू किया गया है। इस कार्यक्रम के द्वारा पूरे जिले के सभी स्कूलों में एक कक्ष को शिक्षण अधिगम सामग्री द्वारा सजाकर रिसोर्स रूम तैयार कराया गया था। इस रिसोर्स रूम में सामान्य बच्चों के साथ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को भी पढ़ाया जाता

है। सर्व शिक्षा अभियान शुरू होने के बाद से यहाँ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष संसाधन शिक्षकों की नियुक्ति की गई। इन विशेष संसाधन शिक्षकों द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान की गई तथा ब्रिजकोर्स सेंटर एवं प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा दी जाने लगी। अतः विशेष आवश्यकता वाले बच्चों तथा सामान्य बच्चों के सीखने की योग्यता में सकारात्मक एवं वांछित सुधार हुआ है।

पीलीभीत जिले में सर्व शिक्षा अभियान

पीलीभीत जिले की भौगोलिक स्थिति अच्छी न होने के कारण शैक्षिक स्थिति अत्यंत खराब है। इसके लिए भौगोलिक स्थिति काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार है, क्योंकि यहाँ काफ़ी संख्या में नदियाँ हैं जो हर वर्ष जुलाई से सितंबर तक तीन महीने बारिश होने से बाढ़ के रूप में कहर ढाती रहती हैं, जिसके कारण स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की पढ़ाई प्रभावित होती रहती है। साथ ही साथ इस जिले की एक सीमा पड़ोसी देश नेपाल से लगी हुई है। शारदा नदी के किनारे बसे गाँव नदी के पानी में बह जाते हैं, जिससे स्कूलों की स्थिति बदलती रहती है और इन बच्चों की शिक्षा प्रभावित होती रहती है।

सर्व शिक्षा अभियान के शुरू होने से पहले पीलीभीत जिले की शैक्षिक स्थिति अच्छी नहीं थी क्योंकि यहाँ शिक्षकों की काफ़ी कमी थी। पीलीभीत जिला शिक्षा के क्षेत्र में पूरे प्रदेश में निम्न स्तर पर था, यहाँ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा के लिए सर्व शिक्षा अभियान सन् 2002 में शुरू हुआ था उस समय पूरे जिले में 1143 स्कूल तथा कोई भी विशेष आवश्यकता वाले बच्चे स्कूल में नामांकित नहीं थे और न ही कोई विशेष/संसाधन शिक्षक ही नियुक्त था, जिसके कारण शिक्षा की स्थिति अत्यंत खराब थी। परंतु भारत सरकार द्वारा संचालित कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान द्वारा इन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए विशेष संसाधन शिक्षक नियुक्त किये गये। इन शिक्षकों ने बच्चों की पहचान करके स्कूलों में नामांकन कराया। इस प्रकार इन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य शिक्षकों द्वारा एवं सामान्य बच्चों के साथ पढ़ाया जाने लगा।

विकलांग बच्चों के लिए समेकित शिक्षा

सन् 1960 में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समेकित करने की संकल्पना कई देशों में शुरू की गई थी। सन् 1970 में भी समेकित शिक्षा के क्षेत्र में नयी पहल के साथ अधिक आवश्यकता महसूस की गई तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए जागरूकता अभियान जैसी सेवाएँ शुरू की जाने लगीं। विकलांगता वर्ष 1980 के बाद से दुनिया के हर कोने से लोगों के सामने ये तथ्य आने लगे कि विकासशील देशों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की बहुत बड़ी संख्या विद्यमान है, जो उन देशों के लिए एक चुनौतीपूर्ण स्थिति बन गई है। यूनिसेफ़ द्वारा अनुमानित 100 विकासशील देशों में 6 से 15 वर्ष के 150 करोड़ बच्चे विकलांग श्रेणी में आते हैं, जिसमें से भारत में 30 लाख बच्चे एक या एक से अधिक विकलांगता की श्रेणी में आते हैं। विकलांगता के साथ लोगों का प्रतिशत सन् 1931 की जनगणना की कुल जनसंख्या का 1.83 प्रतिशत था जो सन् 2001 की जनगणना की कुल जनसंख्या का 2.13 प्रतिशत हो गया।

पूरे देश में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा दिए जाने की चुनौती है, इसके लिए भारत सरकार ने सन् 1971 में समेकित शिक्षा शुरू किये जाने की घोषणा की थी, जिसके अंतर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए नियमित स्कूल तथा विशेष स्कूलों में शिक्षा मुहैया कराई गई है। समेकित शिक्षा का वास्तविक अर्थ है कि 'विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को उनकी आवश्यकता के अनुसार समेकित विद्यालयों में शिक्षा दिलाना तथा उन्हें शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ना' जिससे ये बच्चे अपने जीवन को और अधिक अच्छी तरह से जी सकें तथा समाज के अन्य सामान्य बच्चों के साथ पढ़ सकें।

इस प्रकार विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अलग से स्कूल खोले जाने लगे तथा उनकी शिक्षा के लिए अनेक महत्वपूर्ण समितियाँ एवं संगठन सामने आने लगे। जैसे- माता-पिता परामर्श संघ, तथा अन्य एन.जी.ओ. (NGO) खोले गये हैं। सरकार इन बच्चों की पढ़ाई के साथ-साथ मुफ़्त ड्रेस, खाना, किताबें तथा अन्य आवश्यक शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराती है।

समावेशी शिक्षा

समावेशी शिक्षा के अंतर्गत होने वाले उपयुक्त सभी क्रियाकलापों का मुख्य उद्देश्य ऐसे छात्रों के मन से हीनभावना को दूर कर उनमें सहनशीलता, सदभावना, समानता एवं अनुशासन की भावना विकसित कर उनको पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बनाना है। अर्थात् विशिष्ट बालकों को सामान्य बालकों के साथ रहकर उनके सामाजिक तथा शैक्षिक अनुभवों को समग्र रूप से प्रस्तुत किया जाए। इस प्रकार विशिष्ट बालक अपनी आयु के सामान्य बालकों में अधिक स्वीकृत एवं समायोजित होंगे। इससे उनके स्वबोध एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होगी तथा उनका व्यवहार एक सामान्य बालक के व्यवहार के समान होगा। अर्थात् अपने परिवेश में रहते हुए सभी प्रकार के विकलांग बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ना समावेशी शिक्षा है। समावेशी शिक्षा से तात्पर्य है कि 'प्रचलित शैक्षिक पद्धति में सामान्य बच्चों के साथ उस वर्ग को जोड़ने से है जो किसी तरह की अक्षमता अथवा विकलांगता के कारण प्रचलित पद्धति के अनुकूल नहीं पढ़ सके या वंचित रह गये।'

अध्ययन का उद्देश्य

1. प्राथमिक स्तर पर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन का अध्ययन।
2. प्राथमिक स्तर पर विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन में विशेष/संसाधन शिक्षकों के रवैये का अध्ययन।
3. प्राथमिक स्तर पर समावेशी विद्यालयों में पढ़ने वाले विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की उपलब्धि का अध्ययन

परिकल्पना

1. प्राथमिक स्तर पर विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन में गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार होगा।
2. प्राथमिक स्तर पर विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन में विशेष/संसाधन शिक्षकों की अभिवृत्ति धनात्मक होगी।
3. विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि पर समावेशी शिक्षा का धनात्मक प्रभाव होगा।

जनसंख्या

प्रस्तुत अध्ययन के लिए जनसंख्या के रूप में मुरादाबाद मण्डल के रामपुर जिले एवं बरेली मण्डल के पीलीभीत जिले के उन प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया गया, जिनमें सर्व शिक्षा अभियान संचालित किया जा रहा है।

न्यादर्श (Sample)

वर्तमान अध्ययन के लिए न्यादर्श के रूप में मुरादाबाद मण्डल के रामपुर जिले एवं बरेली मण्डल के पीलीभीत जिले के प्राथमिक विद्यालयों में समेकित शिक्षा से संबंधित सभी विशेष/संसाधन शिक्षकों और कक्षा पाँच के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों का चुनाव किया जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

उपकरण

अध्यापक अभिवृत्ति मापनी।

अध्ययन विधि

वर्तमान अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रदत्तों के एकत्रीकरण हेतु सर्वेक्षण विधि (Survey Method) का प्रयोग किया गया।

मापन की प्रक्रिया

शोधकर्ता ने अध्ययन हेतु पर्यवेक्षक की मदद से प्राथमिक स्तर पर विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के समावेशन के बारे में पता करने के लिए अध्यापक अभिवृत्ति मापनी का निर्माण किया है। प्रारंभ में प्रश्नों का निर्माण किया गया और इसके पश्चात् इस क्षेत्र से संबंधित दस विशेषज्ञ शिक्षकों को इसे आलोचनात्मक ढंग से पढ़ने के लिए दिया गया। विशेषज्ञ शिक्षकों

विशेष/संसाधन शिक्षक
कुल = 40

↓ ↓

रामपुर
20 विशेष/संसाधन शिक्षक

पीलीभीत
20 विशेष/संसाधन शिक्षक

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे
कुल = 175
यादृच्छिक प्रतिचयन

↓

सत्र	2005–06	2006–07	2007–08	2008–09	2009–10	2010–11	2011–12
छात्र संख्या	25	25	25	25	25	25	25

के मूल्यवान सुझावों और उनकी सलाह के अनुसार अभिवृत्ति मापनी में परिवर्तन किया गया। इसके पश्चात् इसे ट्रायल के लिए दिया गया और इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन और परिमार्जन किया गया। अंत में पर्यवेक्षक की तकनीकी मदद से अभिवृत्ति मापनी का निर्माण किया गया। इसके उपरांत अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रस्तुत किया गया।

समावेशी शिक्षा हेतु अध्यापकों की अभिवृत्ति मापने हेतु 20 प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है। इस मापनी में धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया गया है। प्रत्येक प्रश्न की अनुक्रिया हेतु अध्यापकों के समक्ष तीन श्रेणियों यानि सहमत, मालूम नहीं और असहमत को पेश किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण

समावेशी शिक्षा व्यवस्था द्वारा कक्षा पाँच के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के निष्पत्ति स्तर पर प्रभाव को देखने के लिए बच्चों के पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण द्वारा उनके शैक्षिक निष्पत्ति स्तर की जाँच की गई। कक्षा पाँच के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के कक्षा चार की वार्षिक परीक्षा के अंकों को कक्षा पाँच के पूर्व-परीक्षण के रूप में स्वीकार किया गया। पश्च-परीक्षण के रूप में विशिष्ट आवश्यकता वाले कक्षा पाँच के बच्चों की वार्षिक परीक्षा में इन बच्चों के ज़रिए हासिल किए गये अंकों को पश्च-परीक्षण के अंकों की शक्ल में स्वीकार किया गया।

समावेशी शिक्षा व्यवस्था का कक्षा पाँच के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के उनके शैक्षिक निष्पत्ति स्तर पर प्रभाव को जानने के लिए इन बच्चों द्वारा पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण प्राप्त निष्पत्ति प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन और फिर 'टी' टैस्ट की गणना की गई।

प्रमुख निष्कर्ष

1. दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, मानसिक रूप से विक्षिप्त, शारीरिक विकलांग, अधिगम विक्षिप्त श्रेणियों के अंतर्गत विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की रामपुर एवं पीलीभीत जिले के प्राथमिक विद्यालयों की समावेशी कक्षाओं में नामांकन की दर घटी है।
2. रामपुर एवं पीलीभीत में समेकित शिक्षा के अंतर्गत विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों में प्राथमिक विद्यालयों द्वारा वितरित उपकरणों में से एक या दो उपकरणों को छोड़कर बाकी उपकरणों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। इसमें पहले के वर्षों की तुलना में गिरावट आई है।
3. रामपुर एवं पीलीभीत जिले के प्राथमिक विद्यालयों में समेकित शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त करने वाले विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए नियुक्त विशेष संसाधन शिक्षकों की संख्या बहुत कम पाई गई है।
4. प्राथमिक विद्यालयों द्वारा विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान के लिए संचालित मेडिकल असेसमेंट कैंप की संख्या संतोषजनक है।
5. समेकित कक्षाओं के अंतर्गत अध्ययन करने वाले प्राथमिक विद्यालयों के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की स्कूलों में आने-जाने की सुविधा के लिए पर्याप्त मात्रा में रैम्प का निर्माण किया गया।

6. रामपुर एवं पीलीभीत दोनों जिलों के विशेष संसाधन शिक्षक यह मानते हैं कि समावेशी शिक्षा, विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अत्यंत लाभकारी है। इनकी अभिवृत्ति समावेशी शिक्षा के प्रति धनात्मक पाई गई।
7. समावेशी वातावरण का रामपुर एवं पीलीभीत जिले के कक्षा पाँच के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के निष्पत्ति स्तर पर धनात्मक प्रभाव पड़ा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि समावेशी शिक्षा, विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शैक्षिक ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम है।

निष्कर्ष

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की शैक्षिक ज़रूरतों और समस्याओं को लेकर बहुत से शोध-कार्य हुए हैं और इनके निष्कर्ष से यह पता चलता है कि इन बच्चों की ज़रूरतें सामान्य बच्चों से अलग होती हैं और जिनकी पूर्ति न होने के कारण वह कक्षा में दूसरे सामान्य बच्चों से पिछड़ते जाते हैं। विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के शैक्षिक निष्पत्ति के स्तर पर उनके माता-पिता और उनके शिक्षकों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन की प्रख्रति वर्णनात्मक और तुलनात्मक दोनों ही तरह की थी, क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन में एक ओर तो इसमें विशिष्ट आवश्यकता वाले प्राथमिक स्तर के बच्चों का उनकी समेकित कक्षाओं में समावेशन का अध्ययन किया गया। वहीं दूसरी ओर कक्षा के विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के शैक्षिक स्तर पर समावेशन के प्रभाव को जानने एवं समझने के लिए उनके निष्पत्ति प्राप्तांकों की पूर्व-परीक्षण (Pre-Test) एवं पश्च-परीक्षण (Post-Test) के आधार पर तुलना की गई। यह एक बहुत ही मजबूत तथ्य है कि भारत में अभी भी शिक्षकों और माता-पिता को 'समावेशी शिक्षा' के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है। वे समावेशी शिक्षा के स्पष्ट प्रत्यय से अनभिज्ञता रखते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि प्राथमिक विद्यालयों में विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान बहुत ज़रूरी है। इन बच्चों की पहचान के बाद इनको एक ऐसा समावेशी वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे कि विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे, सामान्य बच्चों के साथ मिलकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकें और अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकें।

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की अगर उनके माता-पिता व शिक्षकों और कक्षा के साथियों द्वारा पुनर्लक्षित किया जाए और उनकी मदद की जाए तो निश्चित तौर पर उनको लाभ मिलेगा। विशेष कक्षाओं या विशेष व्यवस्था की तुलना में विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए समावेशी व्यवस्था लाभकारी होती है, क्योंकि समावेशी व्यवस्था में विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे अपने आपको अलग-थलग महसूस नहीं करते हैं। सभी समान्य बच्चे उन्हें सीखने के लिए अभिप्रेरित करते हैं और वे उनसे स्वस्थ शैक्षिक मुकाबला करते हैं। विशिष्ट विद्यालयों में विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चे अपने आपको शैक्षिक तौर पर कमज़ोर महसूस करते हैं और वे इनफ़ीरियोरिटी कॉम्प्लेक्स का शिकार हो जाते हैं, जिसकी वजह से उनकी शैक्षिक प्रगति का स्तर कम रहता है। समावेशी शिक्षा का

चुनौतीपूर्ण और सहयोगात्मक शैक्षिक वातावरण विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों में स्वयं पर विश्वास की भावना को जागृत करता है।

अलैक्जेंडर व अन्य (2011) के मतानुसार शिक्षक, समावेशी शिक्षा को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। परिवर्तन के लिए सभी अध्यापकों की विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति एक अहम भूमिका अदा कर सकती है। वर्तमान अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया कि विशेष संसाधन शिक्षक, समावेशी शिक्षा के प्रति कैसी अभिवृत्ति रखते हैं और इसमें उनकी क्या भूमिका है? अध्ययन के निष्कर्षों में यह पाया गया कि अधिकांश विशेष संसाधन शिक्षक की समावेशी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति धनात्मक थी, परंतु कुछ शिक्षकों की अभिवृत्ति ऋणात्मक भी थी।

शैक्षिक निहितार्थ

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को, शैक्षिक सामग्री को सीखने और समझने में कठिनाई होती है। जितनी जल्दी माता-पिता और शिक्षक विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों को चिह्नित कर लेंगे, उतनी जल्दी ही इस स्थिति से जुड़े घटकों की पहचान की जा सकती है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए उपचारात्मक सामग्री बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए उन शिक्षण-विधियों, प्रविधियों और शिक्षण-सामग्री की खोज की जानी चाहिए जो समावेशी शिक्षा व्यवस्था में सभी बच्चों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

इन बच्चों की यह विशेषता होती है कि उनका आत्म सम्मान कम होता है, जिसकी वजह से उनके व्यक्तिगत विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे बच्चे यह विश्वास करने लगते हैं कि उनकी सफ़लता और असफ़लता उनके कंट्रोल से बाहर है, जिसकी वजह से वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु कठिन परिश्रम का सहारा नहीं लेते हैं। दूसरे शब्दों में, वे कठिन परिश्रम करना छोड़ देते हैं। अतः विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों से संबंधित सभी लोगों, जैसे— माता-पिता, शिक्षक, कक्षा के साथियों के लिए यह ज़रूरी है कि वे एकजुट होकर इनकी शैक्षिक सफ़लता के लिए प्रयास करें। कक्षा में शिक्षक के समक्ष यह एक बहुत बड़ी चुनौती है कि वह जल्दी से जल्दी विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान करें, जिससे कि समयानुसार उनका निदान और उपचार किया जा सके।

आमतौर पर घरों में माता-पिता और विद्यालयों में शिक्षक बच्चों की पढ़ने/लिखने और वर्तनी की त्रुटियों को नज़र अंदाज़ कर देते हैं। वे यह समझते और मानते हैं कि जब बच्चा बड़ा हो जाएगा तब ये समस्याएँ स्वतः ही समाप्त हो जाएँगी, लेकिन इसका उल्टा होता है। अतः इस बात की सख्त ज़रूरत है कि जल्दी से जल्दी ऐसे बच्चों की पहचान की जाए और इनका उपचार किया जाए। इस कार्य के लिए प्राचार्यों, शिक्षकों, माता-पिता, स्कूल के साथियों और दूसरे सामाजिक संगठनों को आगे आना होगा। शिक्षकों को समावेशी कक्षा-कक्ष में ऐसे बच्चों को अभिप्रेरित करना चाहिए और उनपर अपना विशेष व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए।

आज विशेष/संसाधन शिक्षकों के समक्ष यह एक बहुत बड़ी चुनौती है कि वे व्यक्तिगत भिन्नता वाले अधिगमकर्ताओं के लिए अध्यापकों को कैसे तैयार करें। आज इस बात की सख्त ज़रूरत है कि शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकताओं और विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उचित फ़ेर-बदल किया जाए।

वर्तमान अध्ययन के निष्कर्षों से यह बात सिद्ध होती है कि समावेशी शिक्षा से विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के शैक्षिक निष्पत्ति स्तर में सुधार हुआ है। अत: शिक्षकों का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वे विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों पर सामान्य बच्चों की तरह ही ध्यान दें और उन्हें सभी सुविधायें प्रदान करें जिससे कि उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास आत्मीयता से संभव हो सके।

संदर्भ

अरोड़ा, आर. 2011. *ए स्टडी ऑफ़ द इफ़ैक्ट ऑफ़ सैल्फ़ एस्टीम, एडप्टिव बिहेवियर एंड इंटरपर्सनल रिलेशनशिप ऑन अचीवमेंट ऑफ़ चिल्ड्रन विद् स्पेशल नीड्स इन इन्क्लूसिव एंड स्पेशल स्कूलस,* पीएच.डी. (एजुकेशन), एम.जे.पी. रुहेलखंड यूनिवर्सिटी, बरेली.

अलैक्ज़ेंडर, एट. ऑल. 2011. ''रेग्यूलर प्राइमरी स्कूल टीचर्स एटीट्यूड टूवर्ड्स इन्क्लूसिव एजुकेशन'', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इन्क्लूसिव एजुकेशन,* 15(3).

एमएचआरडी, गवनर्मेंट ऑफ़ इंडिया. 2013. *ऐनुअल रिपोर्ट 2012-13,* डिपार्टमेंट ऑफ़ प्राइमरी एंड सेकेंडरी एजुकेशन, नयी दिल्ली.

खान, जे. 2012. *ए स्टडी ऑफ़ द ऐटीट्यूड्स ऑफ़ टीचर्स एंड पेरेंट्स टूवर्ड्स इन्क्लूसिव एजुकेशन एंड द इफ़ैक्ट ऑफ़ इन्क्लूज़न ऑन एचीवमेंट ऑफ़ चिल्ड्रन विद् स्पेशल नीड्स,* पीएच.डी. (एजुकेशन), एम.जे. पी. रुहेलखंड यूनिवर्सिटी, बरेली.

दीपशिखा, एस. 2010. *चैलेंजिस इन इन्क्लूसिव एजुकेशन एंड सर्विस प्रोविज़न्स–पॉलिसीज़ एंड प्रैक्टिसिज़ इन इंडियन कॉन्टैक्स्ट.* नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, नयी दिल्ली.

नायक, जे.सी. 2008. ''ऐटीट्यूड ऑफ़ पेरेंट्स एंड टीचर्स टूवर्ड्स इन्क्लूसिव एजुकेशन'', *एजुट्रैक्स.* 7(6), 18-20.

समावेशी शिक्षा के लिए व्यवसायियों का विकास*

भारती**

पिछले दशकों से 'समावेशी शिक्षा की ओर' विश्वव्यापी आंदोलन, सभी बच्चों को समान शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से चल रहा है, ताकि सभी बच्चे शैक्षिक, सामाजिक, संवेगात्मक और शारीरिक क्षमताओं के उच्चतम स्तर तक पहुँच सकें। हालाँकि, इनमें से बहुत-से बच्चे भिन्न कारणों जैसे कि अधिगम अक्षमता और व्यवहारिक समस्याओं इत्यादि के कारण अपनी क्षमता से कम स्तर तक ही पहुँच पाते हैं। बहुत से देशों ने अपने कानूनों में अनुकूलन किया है, ताकि भिन्न आवश्यकता वाले व्यक्तियों के लिए शिक्षा को ज़्यादा समावेशी बनाया जा सके, लेकिन व्यवहारिक अभ्यासए नीतियों की तुलना में काफ़ी पिछड़े हुए हैं। छात्रों की आवश्यकताओं और उपलब्धता स्तरों की विविधताओं की देखभाल/पूर्ति में शिक्षकों को कठिनाई आ रही है। अधिगम अवरोध अनुभव करने वाले बच्चों के सबसे बड़े समूह में अक्सर 'अदृश्य अक्षमता' होती है। उनमें 'पहचानी न गई' अधिगम अक्षमता हो सकती है अथवा अक्सर व्यवहारिक चुनौती उपस्थित होती है अथवा ध्यान केंद्रित करने में मुश्किल हो सकती है। उनकी उपलब्धि या तो अक्सर अल्प होती है या फिर वह शैक्षिक व्यवस्था से ही बाहर चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षकों में इन बच्चों के अनुरूप उचित व्यवहार एवं अभ्यास देने के कौशल और प्रशिक्षण का अक्सर अभाव होता है, इसके फलस्वरूप, बहुत-से ऐसे बच्चे जिनमें अधिगम अक्षमताएँ अथवा चुनौतीपूर्ण व्यवहार होता है, वे कक्षा-कक्ष व्यवहारों से अधिकाँशतः लाभान्वित नहीं हो पाते हैं।

विविधता एक ऐसी विशेषता है 'जो सभी बच्चों और युवाओं में समान रूप से होती है' प्रत्येक व्यक्ति में आंतरिक और व्यक्तियों के आपसी तुलनात्मक रूप, दोनों ही तरह से।

विविधता में एक शक्ति है क्योंकि विविधता की अवधारणा में स्वीकृति और आदर दोनों ही सम्मिलित हैं। यानि कि प्रत्येक व्यक्ति अतुलनीय है और व्यक्तियों में भिन्नताएँ होती हैं। इसलिए यह उन सभी की ज़िम्मेदारी हो जाती है जो पढ़ा रहे हैं और जो शिक्षकों को उनकी शिक्षण क्षमता में सहायता करते हैं, कि वह विश्वास रखें कि सभी सीख सकते हैं और सभी को सीखने का अधिकार है।

* प्रस्तुत लेख 'Professional Development For Inclusive Education' नामक लेख (Published in *Navtika,* Vol.IV, No. 4, Nov. 2013- January, 2014) का अनुवाद है।

** *अनुवादक एवं असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* डीईजीएसएन, एनसीईआरटी, नयी दिल्ली

विविधता को स्वीकारना

समावेशी शिक्षा विविधता की पूर्ति में मदद करती है। यह केवल अक्षमता वाले बच्चों और युवाओं अथवा विशेष विद्यालयों का विकल्प खोजने तक ही सीमित नहीं है। भाषायी और क्षेत्रीय अल्पसंख्यक समुदायों, गरीबी अथवा दुर्गम गाँवों में रहने वाले बच्चे विद्यालय की पढ़ाई को बेहद कठिन पाते हैं। इन बच्चों को शायद पाठ्यचर्या अरुचिपूर्ण और शिक्षक निरुत्साहित करने वाले लगते होंगे, अथवा विद्यालयी संस्कृति परग्रही अथवा अनुदेशन की भाषा पहुँच से बाहर अथवा बहुत से अवरोध महसूस होते होंगे। समावेशी प्रणाली इन अवरोधों को समझने और ऐसे विद्यालय विकसित करने की कोशिश है, जो इन अधिगम आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो।

समावेशी शिक्षा, विशेष शिक्षा को सुधारने के बारे में नहीं है, और न ही समावेशी विद्यालय वह विद्यालय मात्र है जो अक्षमता वाले कुछ बच्चों को शिक्षित करता है। समावेशी शिक्षा तो सभी तरह के अधिगम अवरोधों को कम करने और सामान्य शालाओं का ऐसा विकास चाहती है जिसमें सभी बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

सामंजस्यता की आवश्यकता और विविधता को स्वीकार करने की समझ जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार और उस राष्ट्रीय मुख्य बिंदु पर आधारित है, जिस पर हाल ही के शिक्षा के अधिकार कानून-2009 में ज़ोर दिया गया है, उसे समावेशी शिक्षा के प्रोत्साहन में लगे समस्त कार्याधिकारियों के साथ साझा करने की ज़रूरत है।

शिक्षा का अधिकार कानून-2009, जिसे 1 अप्रैल 2010 से लागू किया गया, के अनुसार अक्षमता वाले बच्चे वे बच्चे हैं जो अक्षमता वाले बच्चों और व्यक्तियों के दो मुख्य कानूनों के अंतर्गत आते हैं, ये कानून हैं-अक्षमता वाले व्यक्तियों के लिए समान अवसर, अधिकार की सुरक्षा और संपूर्ण भागीदारी कानून-1995 और बहु अक्षमताओं, मानसिक मंदता, सेरेब्रेल पालसी और स्वाधीनता वाले व्यक्तियों की भलाई के लिए राष्ट्रीय ट्रस्ट कानून-1999

इन दोनों ही कानूनों में अभी सुधार हो रहा है और इसलिए अभी इनमें अन्य तरह की अक्षमताओं के समावेशन का अवसर है। यह वाकई एक अग्रगामी कदम है।

हमारे समाज में हमारी विद्यालयी व्यवस्था वह केंद्रीय स्थान है, जहाँ सभी पृष्ठभूमियों से आने वाले व्यक्ति साथ रहना सीखते हैं। समावेशन, व्यवहारिक, शारीरिक अथवा अधिगम दोष वाले उन कुछ बच्चों के बारे में नहीं है जिन्हें मुख्यधारा विद्यालयों में रखा जा रहा है। यह ऐसे समाज निर्माण के बारे में है' जहाँ सभी लोग अपना अनुपम स्थान पा सकें और सभी को लाभ पहुँचाने हेतु एक साथ काम कर सकें। यदि यह काम विद्यालय में शुरू नहीं हो सकता तो समाज के रूप में हम क्या उम्मीद कर सकते हैं। चुनौती भिन्नताओं को हटाने में नहीं है बल्कि भिन्नताओं को यथावत् रखकर, उनके साथ एक हो जाने में है। – *रवींद्रनाथ टैगोर*

अक्षमता वाले बच्चों के अलाभान्वित समूहों वाली श्रेणी में, स्पष्ट समावेशन से कानूनी तौर पर शिक्षा के अधिकार कानून की सभी धाराएँ, विशेषकर गैर-भेदभाव वाली सशक्त धारा, अक्षमताओं वाले बच्चों पर भी लागू होंगी। अब ये बच्चे 25 प्रतिशत की उस श्रेणी में आ जाएँगे, जिन्हें निजी विद्यालयों को दाखिला देना ही होगा। इसके अतिरिक्त अक्षमता वाले बालकों के पालकों को अब शाला प्रबंध समीतियों में शामिल करना ही होगा। उम्मीद है कि इस स्वागत योग्य कदम का विद्यालय विकास योजना पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

इन बदलावों से 'सभी के लिए शिक्षा' की प्रतिबद्धता को शक्ति मिलेगी। सही भावना से लागू किये जाने पर यह मुख्य धारा विद्यालय व्यवस्था में अक्षमता वाले बच्चों की शिक्षा में महत्वपूर्ण लाभ दे सकते हैं।

पिछले प्रयोगों से आगे बढ़ना

अन्य देशों की ही तरह, ऐतिहासिक रूप से भारत में भी विशेष शिक्षा और एकीकृत शिक्षा के लिए कदम उठाये गये, जो कि समावेशी व्यवहारों की ओर बढ़ते वर्तमान मुख्य बिंदु (focus) से पहले की बात है। भूतकाल का विश्लेषण इशारा करता है कि विशेष शिक्षकों की भूमिका, विद्यालायों में अक्षमता वाले शिक्षार्थियों/अधिगमकर्ताओं को स्वीकारे जाने और उनके सामंजस्य के समानांतर ही रही है। शुरुआत में बहुत-से विशेष शिक्षा शिक्षकों को सामान्य विद्यालयों का भाग नहीं माना जाता था। उनके बच्चों की ही तरह उन्हें भी सामान्य शिक्षा से अलग रखा जाता था। अलगाव के आधार थे–वे कहाँ पढ़ाते हैं (अक्सर विशेष विद्यालयों अथवा विद्यालय के अंदर विशेष क्षेत्र), वे क्या पढ़ाते हैं (अलग और भिन्न पाठ्यचर्या) और वह कैसे पढ़ाते हैं (ऐसी विशेष तकनीकों और व्यवहारों द्वारा जिनका प्रयोग सामान्य शिक्षा शिक्षक नहीं करते हैं)। सामान्य और विशेष शिक्षा शिक्षकों के मध्य भी उतनी ही गहरी सीमा रेखाएँ खिंची थीं जितनी कि सामान्य और विशेष शिक्षा वाले बालकों के बीच थीं। बहुत से सामान्य शिक्षा शिक्षक, प्रशासक और बच्चों के अभिभावक संतुष्ट थे कि कुछ चुने हुए शिक्षक अक्षमता वाले बच्चों की 'सेवा' करने के लिए तैयार हैं और कर सकते हैं। हालाँकि, अलगाव के बावजूद भी विशेष शिक्षा ने सामान्य शिक्षा को बहुत कुछ सिखाया है। उदाहरण के लिए, इसका मुख्य बिंदु है छात्रों की आवश्यकतानुसार शिक्षण को ढालना एवं उसमें परिवर्तन, निदानात्मक आकलन का उपयोग, अपने बच्चों के अधिगम में अभिभावकों की भागीदारी और ऐसा ही बहुत कुछ जो शिक्षा के लिए बेहद उपयोगी है। मूल रूप से विशेष शिक्षा में विकसित बहुत-सी विधियों को लेकर उनका अनुकूलन उन बहुसंख्य छात्रों को लाभ पहुँचाने हेतु किया गया है जो विशेष शिक्षा कार्य क्षेत्र में नहीं आते। समावेशी शिक्षा की ओर अग्रसर वर्तमान पहल की आवश्यकता है, स्पष्ट रूप से परिभाषित सिद्धांतों पर आधारित गतिशील व्यवस्था की प्रक्रिया। प्रचलित मुहावरों में भी जेंडर भेद हैं।

- 'औरतों के साथ पुरुष कभी विकास नहीं कर सकते' (तज़ाकिस्तान, रशिया);
- 'लड़का सोना है, लड़की सूत है' (कंबोडिया);
- 'औरतों के बाल लंबे और दिमाग छोटा होता है' (मंगोलिया);

- 'हाथी के अग्रपाद आदमी हैं जबकि पृष्ठपाद औरते हैं।' (थाईलैंड)
- 'खाने के समय प्रिय पतिदेव को पेट भरने तक खाने दो, पत्नी को बाद में खाने के लिए इंतज़ार करना आवश्यक है (लाओस);
- 'एक बेटा बच्चे हैं, दो बेटियाँ कुछ भी नहीं' (वियतनाम);
- 'एक बेटी को पालना और उसकी देखभाल करना वैसा ही है जैसा किसी और के बगीचे की देखभाल करना' (नेपाल);
- 'जब एक लड़की पैदा होती है तो धरती एक फ़ुट सिकुड़ जाती है। जब लड़का पैदा होता है तो उसका स्वागत करने के लिए धरती एक फ़ुट ऊपर उठती है' (नेपाल)।

शिक्षकों का व्यवसायिक विकास

बदलाव की संपूर्ण व्यवस्था का एक अभिन्न अंग है व्यवसायिक विकास, क्योंकि सामान्य विद्यालय शिक्षकों और प्रशासकों दोनों ही के सामने नयी मुख्य चुनौतियाँ हैं कि वह वृहद् विविधताओं और विशेष शिक्षकों को जवाब दें जो अपने कार्य परिवेश और उसके केंद्र बिंदु को बहुत बड़े तरीके से बदलता हुआ महसूस कर रहे हैं।

एक शोध के अनुसार सामान्य विद्यालयी शिक्षकों ने कभी भी विशेष शिक्षा में कोई प्रशिक्षण नहीं पाया है और न ही उनका अक्षमता वाले बच्चों को पढ़ाने का ही कोई अनुभव ही है। शोध दर्शाते हैं कि शिक्षकों में कौशलों का अभाव समावेशी शिक्षा परियोजना के सफ़ल क्रियान्वयन में बाधा पहुँचाता है (स्क्रग्रस मास्ट्रोपियरी 1996, स्वरूप 2001। बहुत से लेखकों ने इंगित किया है कि विद्यालयी व्यवस्थाएँ विशेष रूप से बदलाव का प्रतिरोध करती हैं; नये विचारों को शुरू करना और उनके क्रियान्वयन का प्रतिरोध होता है, यदि उनके पास ऐसे शिक्षक हैं, जिनके पास अपेक्षित बदलाव के क्रियान्वयन के लिए उचित ज्ञान और कौशल नहीं है।

पश्चिमी देशों के अनुभव दर्शाते हैं कि शैक्षिक सुधारों का क्रियान्वयन आसान नहीं रहा है। भिन्न श्रेणियों की ज़रूरतें नीचे दी गई हैं—

> मुख्य अवरोध यह है कि विशेष शिक्षकों का प्रशिक्षण मुख्यधारा शिक्षकों के प्रशिक्षण से अलग तरह से आयोजित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप विशेष आवश्यकता शिक्षा—शिक्षक और शिक्षकों के प्रशिक्षक स्वयं को दो भिन्न व्यवस्थाओं में कार्यरत पाते हैं, और इसलिए अपनी विशेषता साझा करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

शोध ने इंगित किया है कि लघु-कालीन सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम के बजाए, शिक्षकों को उन सेवाकालीन कार्यक्रमों से लाभ पहुँचता है जो व्यवस्थायी कर्मचारियों के विकास की दीर्घकालीन परियोजना का हिस्सा होते हैं।

शिक्षक—शिक्षा

सेवाकालीन शिक्षक—शिक्षा

औपचारिक शिक्षा व्यवस्था, विशेष शिक्षा तथा एकीकृत शिक्षा के साथ-साथ समावेशी शिक्षा (IE) व्यवहारों को समायोजित करती है। समावेशी शिक्षा को बाधित करने वाले कौशल अवरोध हैं—

- समावेशी शिक्षा की अवधारणा को पूरी तरह न समझ पाना।

- शिक्षाशास्त्रीय ज्ञान और कौशलों के विकास की आवश्यकता।
- प्रशिक्षण के निरंतर अवसरों द्वारा अभिवृत्ति और मूल्यों का विकास।
- पुनर्विचार और बहस के और अवसरों को शामिल न करना।

आवश्यकता है कि मुख्य विचार बिंदु हों–

- अभिव्यक्ति में बदलाव और व्यवहार निमार्ण के लिए शिक्षकों के वर्तमान कौशलों और कार्य स्थितियों को स्वीकारना।
- समावेशी कक्षा कक्षों की व्यवहारिकताओं और वास्तविकताओं का ध्यान।
- विविधता द्वारा उठाये गये शिक्षाशात्रीय मुद्दे।
- शिक्षकों में ''अकेलेपन की बाधा'' को दूर करने में मदद।
- विद्यालय-आधारित दलों की स्थापना और शिक्षक साझेदारी पर ज़ोर।
- सामाजिक-सांस्कृतिक रीतियों और धारणाओं के प्रति संवेदनशीलता
- समावेशी शिक्षक अथवा समावेशी विद्यालय बनाने के लिए कोई नुस्खा (recipe) उपलब्ध नहीं है।
- सभी प्रकार के वे व्यवहार जो अंततः ''अच्छे शिक्षण'' व्यवहार हैं, वे समावेशी शिक्षा की ओर ले जाते हैं।

सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा

विषयवस्तु और विधि–

- विशिष्ट ज्ञान देने के लिए आवश्यक विषय वस्तु का पर्याप्त न होना।

क्र. सं.	*शिक्षकों के लिए*	*आवश्यकताएँ*
1.	सामान्य शिक्षा शिक्षक	समावेशी प्रणालियों में प्रशिक्षण ताकि वर्तमान शिक्षा के अलगाववादी रूप को प्रतिस्थापित किया जा सके।
2.	विशेष शिक्षक	• सलाह-मशवरे के कौशलों के नये दायरे की ज़रूरत; मुख्यधारा पाठ्यचर्या का संप्रेषण (transaction), कक्षा कक्ष समावेशी व्यवहारों का प्रोत्साहन इत्यादि। • विद्यालय के बाहर विशेषज्ञों और अभिभावकों के साथ काम करना।
3.	शिक्षक प्रशिक्षक	समावेशी व्यवहारों के बारे में समझ और अधिक ज्ञानार्जन।
4.	प्रशासक	• शिक्षण अधिगम की नयी पद्धतियों के प्रयोग में शिक्षकों की सहायता और प्रोत्साहन करना। • अन्य शिक्षाविदों को शामिल करना।
5.	सहायक व्यवसायकर्ताओं (सामाजिक कार्यकर्ताओं, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, मनोवैज्ञानिकों, उपचारकर्ताओं (Therapist) इत्यादि	• एक दूसरे की भूमिका और कौशलों की समझ के लिए संयुक्त प्रशिक्षण। • समावेशी शिक्षा (IE) के प्रति उचित अभिरुचि निर्माण। • सामान्य विद्यालयों में समावेशी वातावरण में विकसित हो रहे बच्चों के महत्त्व को समझना।

- प्रशिक्षण का संबंध विद्यालय/अधिगम केंद्र के विकास से होना चाहिए।
- विविधताओं की व्यवहारिक उपयोगिता और कक्षा कक्षों की वास्तविकताओं पर पूरा ध्यान (सिद्धांतों को व्यवहार से जोड़ना)।
- छात्र शिक्षकों को अनुभवी शिक्षकों के साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- छात्र शिक्षकों को पुनर्विचार (reflection) के अवसर देना।
- शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में अनुभवी विद्यालय शिक्षकों को सम्मिलित करना।
- संरचनात्मक बाधाओं पर पुनर्दृष्टि।
- हाशिये पर खड़े समूहों से छात्र–शिक्षकों को उचित दिशा की ओर प्रोत्साहित करना।

मैं इस डरा देने वाले निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि कक्षा कक्ष का निर्णायक तत्त्व मैं हूँ। यह मेरी ही व्यक्तिगत प्रणाली है जो वातावरण निर्माण करती है। यह मेरा ही दैनिक मन है जो मौसम बनाता है। एक शिक्षक के नाते, मेरे पास बच्चे के जीवन को खुशनुमा/आनंदपूर्ण अथवा दु:खद बना देने की असीम शक्ति है। मैं अत्याचार का औज़ार अथवा प्रेरणा का स्रोत हो सकती हूँ। मैं अपमानित कर सकती हूँ अथवा सम्मानित, मैं घाव दे सकती हूँ अथवा ठीक कर सकती हूँ। सभी परिस्थितियों में, यह मेरा ही प्रतियुत्तर होता है जो निर्धारित करता है कि किसी संकटपूर्ण स्थिति को बढ़ाया अथवा घटाया जाए और एक बच्चे का मानवीकरण अथवा अमानवीकरण किया जाए।

–(अज्ञात शिक्षक)

प्रशिक्षण प्रबंध

शिक्षकों के वर्तमान कौशल स्तरों और समावेशी शिक्षा कार्यक्रम के प्रभावी, क्रियान्वयन के लिए अपेक्षित कौशलों के बीच के अभाव को प्रशिक्षण द्वारा कम करना नितांत आवश्यक है। नियमित/सामान्य विद्यालय शिक्षक जो पहले से ही कार्य दल का हिस्सा है, उसे व्यवसायिक विकास के पर्याप्त अवसर दिए जाने चाहिए। भारत में शिक्षकों की संख्या अधिक होने और आर्थिक साधनों की सीमित उपलब्धि के कारण प्रस्तावित है कि इन शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रशिक्षक प्रशिक्षण प्रतिरूप (train the trainer model) के द्वारा आयोजित किया जाए। पहले स्तर पर, प्रत्येक विद्यालय से एक शिक्षक को प्रशिक्षित किया जाए। जिसके बाद यह शिक्षक अपने विद्यालय के बाकी सभी शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करेगा/करेगी। हालाँकि इस प्रतिमान का सफ़लतापूर्वक उपयोग भारत–आस्ट्रेलिया प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रम में किया गया है, फिर भी कुछ विशेषज्ञ (विडेल 2005) सावधान करते हैं कि इस प्रतिमान का परिणाम शायद निरंतर एक सा न हो। विडेल (2005) तर्क देते हैं कि कक्षा कक्ष में अपेक्षित कम अथवा ज़्यादा शैक्षिक बदलाव के क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि शैक्षिक बदलाव आयोजक (नियोजक) यह सुनिश्चित करें कि जितना संभव हो उतना सहयोग शिक्षकों को पूरी तरह से अपने तत्कालिक एवं विस्तृत कार्यकारी वातावरण से मिले। यही कारण है कि आयोजकों को विद्यालय–आधारित ऐसे शिक्षक शिक्षा और व्यवसायिक विकास को प्रोत्साहित कार्यक्रमों की स्थापना पर अवश्य

ध्यान देना चाहिए जिसके द्वारा शिक्षकों को कार्यस्थल पर ही स्थानीय संदर्भ में प्रशिक्षित किया जा सके, ताकि उनमें लंबे समय तक की गुणवत्ता में सुधार की क्षमता आ सके। भारत के नीति-निर्माताओं के लिए यह एक विकल्प हो सकता है, विशेष रूप से अक्षमता वाले व्यक्तियों के, कानून के संशोधित प्रारूप की धारा 23 L (2) के संदर्भ में, जिसका संबंध शिक्षकों की योग्यताओं से है, जिसके प्रावधान हैं कि समस्त शिक्षकों को, अक्षमता वाले बालकों को समावेशी कक्षा—कक्ष में पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इससे पूरे भारत में समावेशी शिक्षा के लिए शिक्षकों की योग्यता में अत्यधिक स्थायी रूप से सुधार संभव हो सकेगा।

यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि सभी बच्चे पढ़ सकते हैं (यदि अधिगम को पढ़ने-लिखने और गणित से व्यापक रूप में समझा जाए) और यह भी कि सभी बच्चों का समावेशी और बाल मित्र परिवेश में सुरक्षा, देखभाल और शिक्षा का अधिकार है।

बदलाव के एक मात्र साधन के रूप में हमें लघु प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर बहुत ज़्यादा निर्भर नहीं रहना चाहिए। संपूर्ण व्यवस्था विधि (Whole System Approach) को अपनाया जाना चाहिए और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना निरंतर चलने वाले वृहद कार्यक्रम के, भाग के रूप में बनाई जानी चाहिए और उनमें परिस्थिति के अनुसार बदलाव की गुंजाइश होनी चाहिए। वास्तविक व्यवहार एवं अभ्यास के अवसर पैदा किए जाने चाहिए, और प्रशिक्षण के दौरान इन्हें वास्तविक परिस्थिति में प्रयोग कर अनुभव साझा करना चाहिए। UNESCO के प्रभावी प्रशिक्षण सामग्री में शामिल हैं-

- Teacher Education Resource *Pack:* Special needs in the Classroom.
- *Embracing diversity:* The toolkit for creating inclusive learning friendly environments.
- Toolkit for promoting gender equality in education.
- *Open file on inclusive education:* Support material for managers and administrators.
- *Changing teaching practices:* Closing curriculum differentiation to respond to students diversity.
- EENET (Enabling Education Network), Global (www.eenet.org.uk), EENET Asia(www.idp_europe.org/eenet,asia@eenet.org.uk) and other regional networks.

समावेशन को समझना

चर्चा और पुनर्विचार के अवसरों के साथ-साथ, समावेशन 'कब', 'क्यों' और 'कैसे' की व्यापक समझ का विकास बेहद महत्वपूर्ण है और इसे व्यवसायिक विकास की सभी पहलकदमियों में ज़ोर शोर से शामिल किया जाना चाहिए।

अक्षमता वाले शिक्षणार्थियों के परे जाकर देख पाना और उसका महत्त्व समझने की आवश्यकता है क्योंकि अधिकारों के क्रियान्वयन को कभी भी केवल किसी एक समूह के बच्चों तक

सीमित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, उचित संदर्भ संगत योजना बनाने के लिए प्रचलित पौराणिक धारणाओं (Myths) को संबोधित करना व शाला से वंचित अथवा शाला छोड़ चुके बच्चों को करीब से देखना और इनके बाह्यीकरण के सामाजिक, आर्थिक, भाषायी अथवा किसी अन्य आधार के विश्लेषण की आवश्यकता है। सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में ज्ञान और कौशलों के अलावा सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को भी शामिल किया जाना चाहिए और इसके साथ ही ऐसे अवसर उपलब्ध कराने चाहिए कि समावेशन/बाह्यीकरण के बारे में स्व मूल्यों और विश्वासों/धारणाओं को करीब से देखा और उन पर विचार किया जा सके जैसे कि–

- शिक्षा–सभी का शिक्षा पर अधिकार है।
- अधिगम–सभी बच्चे पढ़ सकते हैं।
- अधिगम में सहायता–सभी को अपने अधिगम में सहायता की आवश्यकता है।
- भिन्नता/विविधता 'विविधता' का मान पहचानने की आवश्यकता है।
- बच्चे के अधिगम को बढ़ावा देने की ज़िम्मेदारी– विद्यालय, शिक्षक, परिवार और समाज सभी की प्राथमिक ज़िम्मेदारी है।
- शिक्षक–सभी शिक्षकों को निरंतर प्रेरणापूर्ण सहायता की ज़रूरत है।

समावेशन की सफ़लता के लिए आवश्यक है कि सभी शिक्षाविदों को दिया जाए–प्रशिक्षण, सह–शिक्षकों के साथ योजना बनाने का समय और बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु—पर्याप्त संसाधन।

विशेषज्ञता विकास

हालाँकि शोध ने दर्शाया है कि समावेशी पद्धतियों से सभी बच्चों को फ़ायदा होता है लेकिन शिक्षक अभी भी इस विशिष्ट पद्धति से पढ़ाने में स्वेच्छा से पहल करने में हिचकिचाते हैं। समावेशन की सफ़लता के लिए महत्वपूर्ण है कि सभी प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण, सह–शिक्षकों के साथ योजना बनाने का समय और बच्चों की आवश्यकता पूर्ति हेतु पर्याप्त संसाधन दिए जाएँ। समावेशन तभी सफ़ल हो सकता है जब शिक्षक पूरी तरह से तैयार हों। विशेषज्ञता–विकास के लिए बहुत से बिंदुओं का ध्यान रखने की आवश्यकता है। ये हैं–

- शिक्षक शिक्षा की ऐसी दीर्घकालिक संरचनाओं की स्थापना की आवश्यकता है जो समावेशी तरीके से काम करने में सक्षम शिक्षकों को लगातार तैयार कर सकें।
- प्रमुख बाधा यह है कि विशेष शिक्षकों का प्रशिक्षण मुख्यधारा शिक्षकों के प्रशिक्षण से अलग तरह से किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप विशेष आवश्यकता शिक्षा–शिक्षक और अध्यापक–प्रशिक्षक खुद को दो अलग व्यवस्थाओं में काम करने वालों के रूप में देखते हैं, और इसलिए उन्हें अपनी विशेषज्ञता साझा करने में कठिनाई होती है। उन्हें ऐसा लगने लगता है कि कठिनाई वाले बालकों को विशेष आवश्यकता शिक्षा व्यवस्था में भेज देना ही सर्वोत्तम विकल्प है। इस परिस्थिति से उबरने के लिए, व्यवस्था में बहुस्तरीय प्रशिक्षण व्यवस्था की ज़रूरत है।
- सभी शिक्षकों में कक्षा कक्ष के समावेशी अधिगम—व्यवहारों की समझ होना

आवश्यक है, इसका व्यवसायिक विकास दोनों ही तरीकों से यानि शुरुआती सेवापूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रम और सेवाकालीन सतत् प्रशिक्षण प्रक्रिया के द्वारा होना चाहिए। इसका निहितार्थ है कि सभी सेवापूर्व शिक्षकों को समावेशी प्रणालियों की कुछ समझ होनी चाहिए। इसके द्वारा चर्चा होनी चाहिए कि विविधता को मुख्यधारा शिक्षा कार्यक्रमों में विशिष्ट ज्ञान के 'पैकेज' (जैसे कि श्रवण विकार, शारीरिक अक्षमता के प्रकार, अथवा बहुभाषायी और बहुसांस्कृतिक शिक्षण) को जोड़ देना मात्र काफी नहीं होगा। इसके बजाए सेवापूर्व शिक्षकों को शुरू से ही यह सोचने का मौका देना होगा कि साधारण कक्षा-कक्ष में शिक्षण और अधिगम के लिए छात्रों की विविधता के क्या निहितार्थ हैं।

- प्रशिक्षण प्रदान करने के तरीकों में भी बदलाव की ज़रूरत होगी ताकि प्रशिक्षण स्पष्ट रूप से कक्षा-कक्ष की वास्तविकताओं पर केंद्रित हो सके।
- हाशिये पर स्थित समुदायों, अल्पसंख्यक सांस्कृतिक समूहों, आर्थिक रूप से अलाभांवित समूहों और अक्षमता वाले व्यक्तियों को शिक्षण व्यवसाय में आने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ये उपेक्षित वर्ग के शिक्षकों के लिए आदर्श शिक्षक (role model) की भूमिका निभा सकते हैं, और अपने निजी और सामाजिक ज्ञान से शिक्षा व्यवस्था को समृद्ध कर सकते हैं।
- बहुत से शिक्षकों, आदर्श रूप में हर विद्यालय से एक शिक्षक को, छात्रों को महसूस होने वाली सामान्य कठिनाइयों और अक्षमताओं को समझने के लिए कुछ हद तक विशेषज्ञता विकसित करनी होगी। आवश्यकता है कि इन शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए जिससे कि वे न केवल अपने व्यवहारों में सुधार कर पायें बल्कि अपने समूहकर्मियों के लिए परामर्शदाता और सलाहकार की भूमिका भी अदा कर सकें।
- कुछ शिक्षकों को उच्च श्रेणी की विशेषज्ञता विकसित करनी होगी। इन शिक्षकों को पहले सामान्य मुख्यधारा शिक्षक के तौर पर अनुभव और कौशल विकसित करना होगा और उसके बाद विशिष्ट विशेषज्ञता। उन्हें जिन चुनौतियों का सामना करना होगा उनकी विविधता को देखते हुए यह बेहद महत्वपूर्ण है। इनकी विशेषज्ञता को सीमित रूप से परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए और इसका विकास प्रशिक्षण के शुरूआती चरण में व्यापक विशेषज्ञता के आधार पर होना चाहिए। चूँकि इन शिक्षाविदों को सामान्य विद्यालयों में या तो स्वयं काम करना होगा, या फिर उनके सान्निध्य में कार्य करना होगा, अतः यह महत्वपूर्ण है कि वह मुख्यधारा शिक्षकों के साथ साझेदारी में काम करने के लिए अपने कौशलों को केवल विकसित ही न करें बल्कि अपनी विशेषज्ञता को अधिकाधिक लोगों तक उपलब्ध भी करायें। इन्हें यह भी जानने की आवश्यकता है कि अन्य विशेषज्ञों, अभिभावकों और विद्यालय के बाहर की संस्थाओं के साथ कैसे काम करें। इन्हें अधिगम बाधाओं की विस्तृत श्रेणियों के बारे में कुछ जानकारी होने के साथ,

परामर्श कौशल, प्रशासन एवं प्रबंध कौशल में पारंगत होना भी आवश्यक है।

एकीकरण तब है जब बच्चा विद्यालय से मिलता है—समावेशन वहाँ है जहाँ विद्यालय बच्चे से मिलता है।

प्रशिक्षण पहल

सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा

कुछ प्रासंगिक प्रश्न—

- शिक्षकों में छात्र विविधता के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकास में, कैसे मदद की जा सकती है?
- छात्र शिक्षकों में समावेशी व्यवहारों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए कौन-से तरीके प्रयोग में लाने चाहिए?
- इसके विकास में विद्यालय अभ्यासों (Practices) के कौन-से प्रकार प्रभावशाली रूप से सहायक होंगे?
- शिक्षक—शिक्षा के संदर्भों में समावेशन के सिद्धांतों को कैसे समाहित किया जाये?
- शिक्षक-प्रशिक्षकों और छात्र शिक्षकों को उनके स्व-विकास के लिए समावेशी परिस्थिति में शिक्षकों के साथ सीधे काम करने के कौन से अवसर प्रदान किये जायें?

सेवा कालीन शिक्षक शिक्षा

कुछ प्रासंगिक प्रश्न-

- सेवा कालीन शिक्षक शिक्षा का कौन-सा रूप समावेशी व्यवहारों के विकास की ओर ले जाता है?
- इन व्यवहारों के क्रियान्वयन में शिक्षकों की मदद के बारे में हम क्या जानते हैं?
- विद्यालयों में अधिकाधिक साझेदारी को कैसे प्रोत्साहित किया जा सकता है?
- समावेशी शिक्षा के पोषण में विद्यालयी नेताओं की कैसे मदद की जा सकती है?
- किस प्रकार के विद्यालयी तंत्रों की स्थापना करनी होगी?

शिक्षा का अधिकार कानून की सफ़लता के लिए खंड स्तरीय संसाधन व्यक्तियों, समूह स्तरीय संसाधन व्यक्तियों और शिक्षकों का प्रशिक्षण अहम है। सामान्य समावेशी विद्यालयों में सभी बच्चों के अधिगम को प्रोत्साहित करने के लिए, नीचे सुझाये प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना बनाई जा सकती है और प्रशिक्षण सामग्री में व्यापक बदलाव किये जाने चाहिए—

- बड़ी संख्या में विद्यालय से बाहर रहने वाले बच्चे, जिनमें अक्षमता वाले बच्चे भी शामिल हैं, की शैक्षिक एवं अन्य आवश्यकताओं के आकलन और जल्द पहचान के लिए ज़रूरी है कि सर्वेक्षण करने वालों, शिक्षकों और अन्य संबंधित सरकारी कर्मचारियों का प्रशिक्षण आयोजित किया जाए।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम उन सभी बच्चों को सामान्य विद्यालयों में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देता है, जो इस अधिनियम में वर्णित मानक और नियमों की पूर्ति करते हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत प्रारंभिक शिक्षा तक पहुँचने में सक्षम होने के लिए निशक्तता वाले बच्चों में कुछ विशिष्ट कौशलों के विकास को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। निशक्तता वाले बालकों को विद्यालय की तैयारी करने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम के खंड 4 के

अंतर्गत विशेष प्रशिक्षण सुनिश्चित किया गया है। यह प्रशिक्षण इसी उद्देश्य से नियुक्त विशेष शिक्षकों अथवा सामान्य शिक्षकों के द्वारा आवासीय, गैर आवासीय अथवा बच्चों के घर पर ही दिया जा सकता है। इन प्रशिक्षकों को भी अपनी भूमिका के निर्वाहन के लिए प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

- प्रशासकों के लिए भी प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि वे विद्यालय में समावेशी अभ्यासों को लागू कर सकें और शिक्षकों को शिक्षण-अधिगम के नये तरीकों को अपनाने और अन्य शिक्षाविदों के साथ कार्य करने के लिए प्रोत्साहित कर सकें और उनकी मदद कर सकें।
- सहायक व्यवसायियों जैसे कि सामाजिक कार्यकर्ताओं, स्वास्थ्य कर्मचारियों मनोचिकित्सकों इत्यादि के साथ संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए ताकि वे एक दूसरे की भूमिकाओं और क्षमताओं को समझ सकें और उनमें उचित अभिवृत्ति का निर्माण हो सके तथा उनमें समावेशी कक्षाकक्ष के शैक्षिक गुणों की समझ का विकास हो सके।
- राजकीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (SCERT) ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) *समूह और खंड संसाधन केद्रों के लिए ज़रूरी है कि वे समावेशी शैक्षणिक व्यवहारों के प्रोत्साहन के लिए स्थानीय मुद्दों को संबोधित करते हुए अपने खुद की* अथवा उचित बदलाव की प्रशिक्षण सामग्री पर आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना बनाएँ।
- सर्व शिक्षा अभियान के प्रशिक्षण मॉड्यूल्स पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है, विशेषकर शिक्षकों के लिए बीस दिवसीय सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में उचित विषयवस्तु और शिक्षणशास्त्रीय व्यवहारों के समावेशन के लिए।
- समावेशी स्थिति में छात्रों की मदद कैसे करें और इन परिस्थितियों में सभी बच्चों के अधिगम और विकास के महत्त्व को समझने के लिए शाला प्रबंधन समितियों (SMC), अभिभावकों और समुदाय के अन्य सदस्यों को संवेदनशील बनाने की ज़रूरत है।
- विकेंद्रीकृत संसाधन सहायता प्रदान करने के लिए, समूह स्तर पर समावेशी शिक्षा संसाधन शिक्षकों के रूप में कार्यरत, प्रशिक्षित विशेष शिक्षकों को सतत् प्रशिक्षण के माध्यम से समूह के अन्य सदस्यों को प्रशिक्षित करना चाहिए और जागरूकता फैलाने के लिए सामुदायिक स्वयंसेवकों को भी गतिशील बनाना चाहिए। ये स्वयं सेवक बदलाव के स्थानीय प्रतिनिधि के रूप में काम कर सकते हैं।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE ACT) के अंतर्गत सोची गई राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् और राजकीय सलाहकार परिषद् में भी मार्गदर्शन, तकनीकी और शैक्षणिक सहायता देने के लिए निशक्तता वाले व्यवसायियों को शामिल करना अति आवश्यक है। इसी तरह से राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग (NCPCR) के साथ-साथ सिक्किम बाल-अधिकार सुरक्षा आयोग (SCPCR) में भी अक्षमता वाले व्यवसायियों को शामिल करना चाहिए ताकि

समावेशी परिस्थितियों में पहचाने गए छात्रों के मुद्दों की देखभाल की जा सके। इन व्यवसायियों की कार्य संदर्भित ज़रूरतों को प्रशिक्षण पहलों के द्वारा सेवाकाल में ही समझकर संबोधित किया जाना आवश्यक है।

अन्य संस्थाओं की भूमिका

भारतीय पुनर्वास परिषद् (Rehabilitation Council of India) विशेष कार्यक्रम चलाती है जो विशिष्ट अक्षमताओं पर केंद्रित है, लेकिन यह विशेष शिक्षक को सामान्य शैक्षिक पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र में सक्षम नहीं बनाती। समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए, आवश्यक कार्य दल को समावेशी व्यवहारों के लिए तैयार करने की योजना बनाने की ज़रूरत है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा प्रस्तावित अध्यापक शिक्षा की रूपरेखा के आधार पर सेवापूर्व प्रशिक्षण, समावेशी दृष्टिकोण को क्रियान्वित किया जाना चाहिए। NCTE द्वारा बनाये गये कार्यकारी समूहों में भी समावेशी शिक्षा के क्रियान्वयन का अनुभव रखने वाले सदस्यों को शामिल करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह सुझाव भी है कि NCTE क्रियान्वयन रूपरेखा को समावेशी शिक्षा के दृष्टिकोण से पुनः देखा जाये और कार्यकारी समूहों को स्नातकोत्तर स्तर पर समावेशी कार्यक्रम विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाये।

शैक्षणिक कार्यक्रमों में आमूल बदलाव

देश के सभी सामान्य शिक्षा कार्यक्रमों जिसमें B.Ed भी शामिल है, का पुनः निर्माण करना ज़रूरी है ताकि सभी शिक्षक कक्षा–कक्ष में विविधताओं को संबोधित कर पायें। सेवाकालीन सामान्य शिक्षकों के लिए निशक्तता वाले बच्चों के साथ काम करने का प्रशिक्षण देने के लिए NCTE को विशिष्ट क्रेडियर आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाना चाहिए ताकि समय के साथ सामान्य शिक्षक भी विशेषज्ञता प्राप्त दक्ष शिक्षक बन सकें। इसके साथ, विशेष शिक्षकों को भी भिन्न माध्यमों जिसमें दूरस्थ शिक्षा शामिल है, से सामान्य शिक्षा प्रशिक्षण (B.Ed) प्राप्त कर लेनी चाहिए ताकि वह भी मुख्यधारा से जुड़े विद्यालयों में काम करने में सक्षम हो सकें।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय समावेशी शिक्षा पर सामान्य विद्यालय शिक्षकों के लिए और विशेष शिक्षकों के लिए सामान्य शिक्षा के आपसी मेलजोल से किए जाने वाले मॉड्यूल बना सकते हैं।

> जब समावेशी शिक्षा को पूरी तरह से अपना लिया जाता है तब हम इस विचार को छोड़ देते हैं कि संसार में योगदान देने के लिए बच्चों को 'सामान्य' बनना होगा। हम समुदाय का माननीय सदस्य बनने के पारंपरिक तरीकों से परे देखना शुरू कर देते हैं और ऐसा करते हुए सभी बच्चों को लगाव/जुड़ाव की वास्तविक भावना प्रदान करने के ऐसे उद्देश्य को पहचानना शुरू कर देते हैं जिसे पूरा करना संभव है। *–(नॉरमन कुन)*

अध्यापक-प्रशिक्षकों की बदलती भूमिका

अध्यापक-शिक्षकों में समावेशी व्यवहारों की समझ और मुख्यधारा शिक्षा के वृहद् ज्ञान, विशेषकर समावेशी कक्षा कक्ष के लिए उचित प्रकार के व्यवहारों के विकास में मददगार अवसरों की योजना बनाने की ज़रूरत है। उन्हें समावेशी कक्षा कक्ष की वास्तविकताओं और व्यवहारिकताओं पर केंद्रित होने की ज़रूरत है, बजाए इसके कि शिक्षकों (दोनों ही सेवाकालीन और सेवा पूर्व) से अपेक्षा की जाए कि वह सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहारिक बनायें।

खास समूह के छात्रों की मनोवैज्ञानिक अथवा चिकित्सकीय विशेषताओं पर चर्चा करने के बजाए छात्र विविधता से उठी शिक्षणशास्त्रीय कठिनाइयों पर पुनर्विचार और वाद-विवाद के अवसरों को खोजने और चर्चा के लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों में कुशलता विकसित की जानी चाहिए।

विशेष शिक्षा शिक्षकों की बदलती भूमिका

समावेशी व्यवहारों को प्रोत्साहित करने की ओर बढ़ते वर्तमान परिदृश्य में विशेष शिक्षकों से उम्मीद है कि वह ज़्यादा समय सामान्य विद्यालयों में काम करते हुए बितायेंगे और इन विद्यालयों में शिक्षकों की सहायता करेंगे। इसका निहितार्थ है कि उन्हें समावेशी कक्षा–कक्ष व्यवहारों, मुख्यधारा पाठ्यचर्या, परामर्श इत्यादि में नवीन कौशलों का विकास करना होगा।

इन्हीं मुद्दों के आस-पास प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संरचना करनी होगी ताकि विशेष शिक्षा विशेषज्ञ और सामान्य शिक्षक एक साथ अपनी बदलती भूमिका पर विचार कर सकें। यदि शिक्षकों को समावेशी प्रणालियों में प्रशिक्षित करना है तो उनके प्रशिक्षण कार्यक्रमों को भी उसी प्रकार से आयोजित करना होगा। विशेष शिक्षा और विशेष आवश्यकता शिक्षा कार्यक्रमों के बीच की दुर्गम दूरी को एकीकृत कार्यक्रमों अथवा कार्यक्रमों के बीच अधिक लचीले माध्यमों के द्वारा बदलने की ज़रूरत है।

घर में विद्यालय

सरकार के प्रमुख कार्यक्रम 'सर्व शिक्षा अभियान' की बालकों की शून्य अस्वीकृति नीति के क्रियान्वयन के लिए बहुविकल्प प्रणाली को अपनाते हुए घर में विद्यालय की शुरूआत की गई। इसी पर आधारित एक सुधार, अभी शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में किया गया है, जिसमें बहु और अति अक्षमता वाले बालकों को सामान्य व्यवस्था के लिए तैयार करने के विकल्प के रूप में घर आधारित शिक्षा पर विचार किया गया है।

इस सुधार की माँग है कि शिक्षक और अन्य सभी संबंधित व्यक्तियों को सभी छात्रों, जिसमें घर में विद्यालय का विकल्प चुनने वाले भी शामिल हैं, को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए। इससे संबंधित कुछ मुद्दे जिन पर प्रासंगिक चर्चा की आवश्यकता है–

- घर आधारित शिक्षा कार्यक्रम देने के लिए बच्चों की पहचान और उन्हें अति अक्षमता का प्रमाणपत्र कौन देगा?
- इन बच्चों के घर कौन जाएगा और इसकी आवृत्ति क्या होगी?
- किस प्रकार की पाठ्यचर्या अपनाई जाएगी और शिक्षण-शास्त्रीय सिद्धांतों का मानक क्या होगा?

- दो वक्त की ज़रूरतों को पूरा करने में जुटे अभिभावकों को घर–आधारित विद्यालय के छात्रों की अधिगम सहायता के लिए आवश्यक प्रशिक्षण कौन देगा?
- हमारे देश के हर कोने में एकसार रूप में बच्चे को निजी सहायता, परिवार को सामाजिक सुरक्षा, घर में पुनर्वास सेवाएँ इत्यादि आवश्यक सहायक सेवाएँ देने की ज़िम्मेदारी किसकी होगी?
- घर में विद्यालय में छात्रों के संभावित शारीरिक दंड अथवा दुर्व्यवहार का निरीक्षण कौन करेगा?
- घर में, विद्यालय में दाखिल बच्चों को वर्तमान सुविधाएँ जैसे कि दोपहर का खाना, मुफ़्त वर्दी, पाठ्यपुस्तकें इत्यादि कैसे प्राप्त होंगी?
- घर में विद्यालय कार्यक्रम के गलत प्रयोग की निगरानी कैसे होगी?
- बच्चों को सामान्य विद्यालय में वापिस लाने की ज़िम्मेदारी किसकी होगी?

निष्कर्ष

यह सर्वमान्य मत है कि शिक्षक शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पर्याप्त संख्या में भली भाँति प्रशिक्षित शिक्षक सभी के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा की चाबी हैं। शिक्षकों और शिक्षाविदों के व्यवसायिक विकास में दृष्टिकोण बदलाव और अन्य आवश्यक कौशलों को समाहित किया जाना चाहिए ताकि एक समावेशी समाज का नेतृत्व हो सके। शिक्षण शोध ने दर्शाया है कि अच्छा शिक्षण व्यक्तिगत भिन्नताओं की परवाह किये बगैर सभी बच्चों के लिए प्रभावी होता है। सभी के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने का बेहद महत्वपूर्ण तरीका है शिक्षण–प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बदलाव और शिक्षकों की सतत् व्यवसायिक सहायता।

समावेशी शिक्षा है ''संसार के सभी बच्चों और युवा लोगों का अपनी वैयक्तिक शक्तियों और कमज़ोरियों के साथ, अपनी उम्मीदों और आशाओं के साथ, शिक्षा पर अधिकार। यह वह शिक्षा व्यवस्था नहीं है जिस पर कुछ विशेष प्रकार के बच्चों का अधिकार हो। इसीलिए, यह देश की एक ऐसी विद्यालयी व्यवस्था है जिसे सभी बच्चों की आवश्यकता के अनुरूप समायोजित किया जा सके।''

–बी. लीन्डक्विस्ट, यू एन रैपरटियर ऑन यू एन स्टैन्डर्ड रूल्स

ज्ञान और मूल्य—मदरसा शिक्षा के संदर्भ में

सूफ़िया नाज़नीन*

शिक्षा जहाँ सामाजिक पुनर्निर्माण एवं सांस्कृतिक विकास पर बल देती है, वहीं सभ्यता के मापक यंत्र के रूप में भी कार्य करती है। अन्य धर्मों के समान इस्लाम धर्म में भी शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कुरान के अनुसार तालीम (शिक्षा) निजात (मुक्ति) का साधन है। एक बच्चे को दिए जाने वाले सारे उपहारों में सबसे उत्तम उपहार उसे अच्छी और उदार शिक्षा देना है। शिक्षा और मूल्य में घनिष्ठ संबंध होता है। मूल्य जहाँ व्यक्ति की पसंद-नापसंद, आवश्यकता, इच्छा, संस्कृति द्वारा निर्धारित मानकों एवं सही-गलत की अवधारणा को दर्शाते हैं, वहीं शिक्षा इन मानकों की प्राप्ति और उनके स्तर तक पहुँचने में योगदान देती है। इस्लाम में भी धर्म, एकता, शक्ति, सत्य, न्याय, प्रेम, सुंदरता आदि मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और इन मूल्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षा एवं शिक्षकों की भूमिका को महत्वपूर्ण बताया गया है। इस लेख के माध्यम से मूल्य एवं मूल्य शिक्षा के महत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ मूल्य निर्धारण में मदरसा एवं उनके शिक्षकों की भूमिका को जानने का प्रयास किया गया है। मुस्लिम समुदाय में मदरसे आज भी शिक्षा प्रदान करने वाली प्रमुख औपचारिक संस्थाएँ हैं और मदरसा शिक्षक अपने विचारों और व्यवहारों को आदर्श रूप में प्रस्तुत करके, पैग़ंबरों एवं उलेमाओं के जीवन परिचय से अवगत करवाकर, विद्यार्थियों में अंतर्निहित गुणों को सृजनात्मक दिशा प्रदान कर एवं सहपाठ्यचारी क्रियाओं के माध्यम से मदरसा शिक्षार्थियों में आवश्यक नैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का विकास कर सकते हैं।

प्रस्तावना

शिक्षा सभ्यता के विकास का एक सशक्त माध्यम है। यह जहाँ सामाजिक पुनर्निर्माण एवं सांस्कृतिक विकास पर बल देती है, वहीं सभ्यता के मापक यंत्र के रूप में भी कार्य करती है। यह केवल सामाजिक प्रगति पर ही ध्यान नहीं देती बल्कि समाजोत्थान हेतु नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक विकास आदि पर भी बल देती है। गांधी जी ने सत्य ही कहा है, *''शिक्षा संपूर्ण जीवन की तैयारी, वातावरण के साथ समायोजन, चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समन्वित विकास है।''* (भावानुवाद–फ़ैसल 2011, पृ. 72) अर्थात् शिक्षा न केवल तीन 'आर' (रीडिंग, राइटिंग, अर्थमैटिक) का प्रशिक्षण प्रदान करती है, बल्कि

* *शोध छात्रा* (जे.आर.एफ़.)शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)-221005

यह हस्तकला के ज्ञान, चारित्रिक एवं नैतिक गुणों के सृजन एवं मानसिक शक्तियों के विकास के माध्यम से बालक के हाथ, हृदय एवं मस्तिष्क का गुणात्मक विकास भी करती है। सामान्य शब्दों में यह बालक को आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं भौतिक सुविधाएँ प्रदान कर बालक के अंतर्निहित गुणों को उजागर करती है।

शिक्षा प्रमुख रूप से बालक के शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा के चहुँमुखी विकास का माध्यम है। यह जहाँ बालक के व्यक्तित्व में विद्यमान अवगुणों का मार्गांतरीकरण एवं शोधन करती है, वहीं नवीन एवं उपयोगी गुणों का सृजन भी करती है।

शिक्षा की महत्ता पर सभी धर्मों और उनके दर्शनों में प्रकाश डाला गया है। अन्य धर्मों के समान इस्लाम धर्म में भी शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस्लाम धर्म का विकास हज़रत मोहम्मद (स.अ.व.) की शिक्षाओं के फलस्वरूप छठी शताब्दी ईसवी में अरब में हुआ। कालांतर में यह धर्म संपूर्ण विश्व में फैल गया।

इस्लाम में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। *कुरान शरीफ़* में तालीम (शिक्षा) को निजात (मुक्ति) का साधन बताया गया है (राय 2005, पृ. 214)। ज्ञान एवं शिक्षा दोनों को ही इस्लाम धर्म में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। दोनों ही इस्लाम धर्म के अभिन्न अंग हैं। इस्लाम अपने अनुयायियों को धार्मिक ज्ञान के साथ-साथ ज्ञान की अन्य शाखाओं को जानने एवं उन्हें सीखने के लिए प्रोत्साहित करता है। वास्तव में इस्लाम में शिक्षा को एक व्यापक रूप में परिभाषित किया गया है। यह व्यक्ति को एक विशिष्ट प्रकार के आचरण के अनुरूप कार्य करने को तैयार करती है, ताकि हृदय समस्त सांसारिक महत्वाकांक्षाओं से परिशुद्ध होकर बौद्धिकता के उस स्तर को प्राप्त कर सके जिससे मानवता को सत्य की साक्षात् अनुभूति हो सके। *कुरान* के अनुसार, दिव्य प्रकटीकरण एवं पैग़ंबर को भेजने का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र में ज्ञान का संप्रेषण करना था (भावानुवाद–कासमी (संपा.), 2006, पृ. 218। पैग़ंबर को दिव्य प्रकटीकरण कराने का मुख्य कारण, अपने अनुयायियों में ज्ञान और बुद्धि का संचार करना था। अल्लाह चाहता है कि उसका प्रत्येक अनुयायी धार्मिक ज्ञान के साथ-साथ वृहद बौद्धिक ज्ञान प्राप्त कर पूर्ण शिक्षित हो जाए।

इस्लाम में ज्ञान की अवधारणा (Concept of Knowledge in Islam)

इस्लाम में ज्ञान को 'सत्य को जानने की अवस्था' के रूप में परिभाषित किया जाता है। मनुष्य को जो ज्ञान दिया गया है वह फ़रिश्तों (ईशदूतों) को भी नहीं प्राप्त है। जब फ़रिश्तों ने हज़रत आदम (अस.) की उच्चता पर प्रश्न उठाया तो उनके ज्ञान के कारण ही अल्लाह के आदेश पर फ़रिश्ते उनके आगे सिर झुकाने को तैयार हो गए (भावानुवाद, www.edublogspot.in)। इस्लाम में शिक्षा की महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण *कुरान* है, जिसकी सबसे पहली अवतरित आयत ज्ञान प्राप्ति का संदेश देती है–

''ऐ नबी, पढ़िए, अपने रब के नाम के साथ जिसने पैदा किया, इंसान की रचना की, पढ़िए आपका रब बड़ा उदार है जिसने कलम के द्वारा ज्ञान सिखाया, इंसान को वह ज्ञान दिया, जिसे वह न जानता था।'' (करजावी, 2000, पृ. 18)

अल्लाह ने ही इंसान को बनाया है और ज्ञान अर्जित करने हेतु कुछ यंत्र जैसे–सुनने एवं देखने की शक्ति एवं बुद्धि प्रदान की है। *कुरान* के अनुसार– *''अल्लाह ने ही तुम्हें तुम्हारी माँ के गर्भ से बाहर निकाला है, जबकि तुम कुछ नहीं जानते थे और उसने ही तुम्हें सुनने, देखने एवं हृदय से महसूस करने की शक्ति प्रदान की है, जिसके लिए तुम्हें उसका शुक्रगुज़ार होना चाहिए''* (भावानुवाद–www.edu.blogspot.in)। इस्लाम ज्ञान की खोज हेतु अपने अनुयायियों को प्रेरित करता है। ज्ञान ही है जिसके कारण अल्लाह अपने प्रतिनिधियों का सम्मान करता है, वह उन्हें सिखाता है, ताकि वे इसे मानव मात्र को सिखा सकें। इस्लाम धर्म के अनुयायियों पर पहली और सबसे महत्वपूर्ण शर्त ज्ञान अर्जित करना है और दूसरी, इस ज्ञान का अभ्यास एवं प्रसार करना है। कोई भी व्यक्ति जन्म से नहीं बल्कि अपने ज्ञान से मुसलमान बनता है। अज्ञानता की स्थिति में रहते हुए मुसलमान नहीं बना जा सकता। यदि हम ज्ञान के प्रकाश को स्वयं में समाहित कर लें तो हम जीवन के प्रत्येक पद पर इस्लाम के बताए मार्ग को स्पष्ट रूप से देख पायेंगे और बुराइयों से बच पायेंगे। ज्ञान प्राप्ति द्वारा ही अल्लाह के निकट जाया जा सकता है।

ज्ञान प्राप्ति हेतु इस्लाम में ज्ञानेंद्रियों, स्वानुभव, प्रत्यक्षण आदि के माध्यम से सीखने की बात की गयी है न कि रटने और अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति अपनाने से। शिक्षा के माध्यम से ही मस्तिष्क एवं मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है। अंधकार से प्रकाश की ओर, नुकसान से फ़ायदे की ओर एवं गलत से सही की ओर बढ़ा जा सकता है। इस्लाम ने ज्ञान को वह प्रकाश बताया है जिससे व्यक्ति दीन (परलोक) एवं दुनिया (लोक) दोनों जगत में मार्गदर्शन पाता है और जीवन के परम उद्देश्य को सफ़लतापूर्वक प्राप्त करता है। इस संबंध में अल्लामा युसुफ़ करजावी लिखते हैं कि *''इल्म (ज्ञान) वह जबरदस्त कुवत (ताकत) है, जिसकी बदौलत इंसान अपनी ज़िदगी को फैलाता है और अपने वजूद को वुसअत (विस्तार) से हमकिनार (सँवारता) करता है। फिर वह सिर्फ अपने बारे में ही नहीं सोचता और न ही सिर्फ अपने इर्द-गिर्द ही देखता है बल्कि इन दायरों से आगे-बढ़कर माज़ी (अतीत) में भी झाँकता है, हाल (वर्तमान) की रौशनी में मुस्तक़बिल (भविष्य) को भी समझने की कोशिश करता है और कायनात (संसार) की सारी वुसअत (विस्तार) के बारे में भी गौरोफिक्र (चिंतन) करता है।''* (करजावी 2000, पृ. 29)

अत: अल्लामा युसुफ़ करजावी द्वारा लिखित उक्त पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि इस्लाम में ज्ञान प्राप्ति पर प्रमुखता से बल दिया गया है ताकि इंसान इल्म (ज्ञान) की रोशनी में अपनी कमियों को दूर कर सकें, अपने अंदर की बुराइयों को मिटा सकें और अपने अंदर उन गुणों का विकास कर सकें जिसके माध्यम से न केवल वह अपने अतीत की कमियों को मिटाते हुए अपने वर्तमान एवं भविष्य को सँवारे बल्कि संपूर्ण समाज के वर्तमान एवं भविष्य को सँवारने में अपना योगदान दे सकें।

मूल्य (Values)

मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत वे मानक होते हैं जो समाज का अंग होने के नाते इकाइयों, व्यक्तियों एवं परिस्थितियों का मूल्यांकन करते हैं। ये मूल्य समाज की रीढ़ की हड्डी के समान होते हैं। ये, वो विश्वास हैं जिन्हें व्यक्ति किसी दी

हुई परिस्थिति में क्रिया करने हेतु चुनता है। कोई आदर्शात्मक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धांत, जो किसी दी हुई परिस्थिति में हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं और जिन पर हमारा व्यवहार आधारित होता है, मूल्य कहलाते हैं। मूल्य समाज दर समाज एवं समय-दर-समय बदलते रहते हैं। हमारा जीवन इन मूल्यों के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। ये मूल्य सही और गलत के हमारे निर्णय द्वारा ही निर्धारित होते हैं। मूल्य वे अंतहीन विश्वास होते हैं, जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत एक निश्चित व्यवहार को निर्धारित करते हैं। मूल्य की तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं-

- ये जीवन के प्रारंभिक वर्षों में निर्मित होते हैं और शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होते।
- मूल्य सही और गलत को परिभाषित करते हैं।
- मूल्य स्वयं को सत्य, असत्य, वैध-अवैध अथवा सही-गलत सिद्ध नहीं करते।

आलपोर्ट (1950) के अनुसार, *''कोई भी चीज़ जो संतुष्टि उत्पंन करती है, मूल्य के रूप में पहचानी जाती है।''* (भावानुवाद—भास्कराचार्युलू एवं राव 2009, पृ. 27-28)

इस प्रकार मूल्य व्यक्ति की पसंद-नापसंद, आवश्यकता, इच्छा एवं संस्कृति द्वारा निर्धारित मानकों को दर्शाते हैं। मानव के दिन-प्रतिदिन के जीवन में उनके व्यवहार एवं क्रियाओं को नियंत्रित एवं मार्गदर्शित करने का कार्य मूल्य ही करते हैं। प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं, वस्त्र जो हम पहनते हैं, जिस प्रकार से हम एक-दूसरे के साथ अंत:क्रिया करते हैं, हमारे प्रत्यक्षीकरण आदि सभी में मूल्य प्रदर्शित होते हैं। मूल्य रुचि, विकल्प, आवश्यकता, इच्छा एवं वरीयता के आधार पर निर्मित होते हैं। मूल्य में भावनाओं एवं क्रियाओं के चिंतन, जानने अथवा समझने की प्रक्रिया निहित रहती है। लोगों का व्यवहार हमें उनके मूल्यों को जानने में मदद करता है। किसी व्यक्ति पर किसी प्रकार का दबाव अथवा डर दिखाये बिना किसी निश्चित समय में उसके द्वारा किये जाने वाले व्यवहार अथवा क्रिया के माध्यम से उसके मूल्यों का आकलन किया जा सकता है। सामान्यत: मूल्य व्यक्ति के स्वयं के चयन द्वारा निर्धारित होते हैं। मूल्य मुख्यत: निम्नलिखित तीन आयामों पर निर्धारित होते हैं- (भावानुवाद—सुकुमार 2009, पृ. 10)

(i) व्यक्ति का आत्म।
(ii) आत्म एवं अन्य व्यक्ति जिनके साथ वे प्रतिदिन अंत:क्रिया करते हैं।
(iii) सामाजिक मानक।

हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में व्यक्ति का व्यवहार उपरोक्त वर्णित तीनों आयामों पर आधारित हमारे मूल्यों द्वारा निर्मित होता है। उदाहरणस्वरूप, आत्मसम्मान एवं व्यक्तिगत आध्यात्मिक मूल्य व्यक्ति के आत्म (Self) को नियंत्रित करते हैं। हमारे माता-पिता, परिवार एवं अन्य लोगों के साथ हमारे संबंध अंतर्व्यैक्तिक आयाम द्वारा नियंत्रित होते हैं और समाज में हमारा व्यवहार दूसरों की भावनाओं का सम्मान करने पर निर्धारित एवं नियंत्रित होता है।

मूल्य के प्रकार (Types of values)

मूल्य मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं-

- यांत्रिक मूल्य **(Instrumental values)** जैसे- रुचि, ऐश्वर्य, समृद्धि आदि।
- **आत्मिक मूल्य (Intrinsic values)** जैसे-स्वास्थ्य, सम्मान, पवित्रता आदि। (भावानुवाद—भास्कराचार्युलू एवं राव 2009 पृ. 28)।

यांत्रिक मूल्य जहाँ विरोधाभास उत्पंन करते हैं वहीं आत्मिक मूल्य शांति एवं सहयोग लाते हैं।

सन् 1979 में बी.आर. गोयल द्वारा 83 मूल्यों की एक सूची बनायी गयी। तत्पश्चात् डॉ. वी.के. गोकक ने 1981 में इन मूल्यों को पाँच आधारभूत मानवीय मूल्यों के रूप में वर्गीकृत किया। इस प्रकार ये पाँच मानवीय मूल्य मुख्य मूल्यों की श्रेणी में और इनके अंतर्गत आने वाले अन्य मूल्य उपमूल्यों की श्रेणी में आते हैं। ये पाँच मानवीय मूल्य हैं- सत्य (Truth), अच्छा चरित्र (Right conduct), शांति (Peace), प्रेम (Love) एवं अहिंसा (Non-voilence) (भावानुवाद–कुमार, 2009, पृ. 17)

ये पाँच मानवीय अथवा मुख्य मूल्य सार्वभौमिक रूप से सभी धर्मों द्वारा स्वीकार किये जाते हैं परंतु इनकी तुलना में उपमूल्य अधिक प्रेक्षणीय होते हैं जबकि मुख्य मूल्य की सही पहचान कर पाना कभी-कभी कठिन हो जाता है क्योंकि कभी-कभी कुछ व्यक्ति इनका दिखावा भी करते हैं जबकि वास्तव में वे इसे हृदय से अपनाते नहीं हैं।

इस्लाम में मूल्य की अवधारणा (Concept of value in Islam)

मूल्य वे हैं, जिन्हें किसी व्यक्ति द्वारा महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता हैं, जो किसी निश्चित व्यवहार अथवा क्रिया करते समय सही एवं गलत के अंतर को व्यक्त करते हैं और व्यक्ति को सही करने के लिए प्रेरित करते हैं। ये चरित्र के नैतिक एवं नीतिशास्त्रीय गुण होते हैं। इस्लाम धर्म में भी कुछ आधारभूत मूल्यों का पालन करने का आदेश दिया गया हैं। इंसान इन मूल्यों के बिना जीवित नहीं रह सकता। व्यक्तियों को इन मूल्यों का पालन एवं सम्मान करने की सलाह दी गयी है, ये मूल्य हैं-

1. धर्म (Religion) इस्लाम में धर्म को प्रत्येक व्यक्ति के लिए आधारभूत मूल्य अथवा अधिकार बताया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपना धर्म चुनने के लिए स्वतंत्र है, किसी को भी किसी धर्म विशेष को अपनाने एवं उसका पालन करने हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता। धर्म व्यक्ति को उसके जीवन का उद्देश्य बताने, मार्गदर्शन, शांति एवं सहयोग के लिए होता है। धर्म व्यक्ति को सत्य, न्याय एवं अन्य गुणों की शिक्षा देता है। साथ ही हर प्रकार की बुराई से दूर रहने की शिक्षा देता है। *कुरान* के अध्याय 2 की 256वीं आयत में अल्लाह ने कहा है, *''धर्म में कोई भी अनिवार्यता नहीं है, सत्य त्रुटियों को स्पष्ट करता है।''* (भावानुवाद– www.edu.blogspot.in)

2. अमरत्व (Eternity) सामान्यत: यह गुण संपूर्ण रूप से अल्लाह का है। मानव यद्यपि नश्वरता के गुण के साथ निर्मित हुआ है तथापि उसके अंदर अमरता के गुण को प्राप्त करने की इच्छा विद्यमान रहती है जो कभी समाप्त नही होती। इस्लाम में व्यक्ति के लिए नश्वर से अनश्वर जीवन की प्राप्ति का मार्ग खुला रखा गया है।

3. एकता (Unity) एकता का आदर्श, परिवार के सदस्यों के बीच शांति एवं सहयोग लाता है। यह राष्ट्र के सदस्यों अथवा आदर्श समूहों के बीच एक घनिष्ठ संबंध की स्थापना करता है। कुरान के अनुसार, ''सभी मुस्लिम आपस में भाई हैं और उनके बीच घनिष्ठ प्रेम एवं लगाव है।''

4. शक्ति (Power) इस्लाम द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को सही एवं गलत में अंतर करने की शक्ति

प्रदान की गयी है। वह जो भी क्रियाएँ करता है उसके लिए वह अकेला ही उत्तरदायी होता है। शक्ति का आदर्श व्यक्ति से आशा करता है कि वह शांति, विचारों की स्वतंत्रता, विश्वास एवं अभिव्यक्ति करने की स्वतंत्रता आदि गुणों पर आधारित राज्य की स्थापना करे, जिसकी प्राप्ति हेतु नैतिकता से युक्त व्यक्तियों के परिश्रम करने की आवश्यकता है।

5. सत्य या बुद्धि (Truth or Wisdom) सत्य अथवा ज्ञान की खोज हेतु बुद्धि एक मानवीय आदर्श के रूप में कार्य करती है। यह अपूर्ण ज्ञान एवं विश्वासों के बीच अंतर करती है। अत: व्यक्ति को सत्य की प्राप्ति हेतु प्रकृति के कण-कण में विद्यमान छुपी हुई अवधारणाओं का गहनता से अध्ययन करना चाहिए।

6. ज्ञान (Knowledge) ईश्वर ही ज्ञान है, वह ही सत्य है। वह हर तत्त्व का साक्षी है। वास्तव में पृथ्वी अथवा स्वर्ग कहीं पर भी एक अणु के आकार की वस्तु भी उससे छिपी हुई नहीं है। हर ढकी और खुली चीज़ का उसे ज्ञान है। हमारे मस्तिष्क में क्या छिपा है, हम उसे दिखायें या छिपायें, हर परिस्थिति में उसे उनका ज्ञान है और इसी ज्ञान को वह मानव मात्र को स्वयं में जागृत करने की प्रेरणा देता है।

7. न्याय (Justice) अल्लाह न्याय करने में उत्तम है और वह अपने बंदों के साथ कभी अन्याय नहीं करता। वह सभी प्राणियों को स्वयं के साथ एवं दूसरों के साथ दोनों ही परिस्थितियों में न्याय करने एवं निष्पक्ष व न्यायपूर्ण व्यवहार करने की प्रेरणा देता है।

8. प्रेम (Love) इस्लाम में प्रेम पर विशेष बल दिया गया है। ईश्वर प्रेम करने वाला है और अपने प्राणियों को मार्गदर्शित करने, आश्रय देने, उनकी मदद करने, निर्माण करने, पोषण करने में अपने प्रेम का प्रदर्शन करता है। अपने प्राणियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने, दया, क्षमा आदि द्वारा उसका प्रेम प्रदर्शित होता है। इस प्रकार वह अपने प्राणियों को अपने सगे-संबंधियों, मित्रों एवं समुदाय व समाज के सदस्यों के साथ वैसा ही व्यवहार करने की प्रेरणा देता है और अपेक्षा करता है कि वे उसके बताए प्रेम मार्ग पर ही चलें।

9. अच्छाई (Goodness) *कुरान* के अनुसार, *''अल्लाह सबसे अच्छा है, सभी प्रकार की बुराइयों (कुददूस) से मुक्त है। वह सभी अच्छाइयों का स्रोत और सभी प्रकार की प्रशंसा का पात्र है''* (भावानुवाद– www.edu.blogspot.in)। अच्छाई अल्लाह का गुण है और प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन अच्छाइयों को स्वयं में अपनाये। जैसे अल्लाह सबके लिए अच्छा है वैसे ही व्यक्तियों को भी अच्छा करना चाहिए। सबके साथ अच्छा करने वालों के साथ अल्लाह भी अच्छा करता है।

10. सुंदरता (Beauty) अल्लाह ने हर वस्तु में सुंदरता का गुण विद्यमान किया है। मानव अपने सुंदर रूप में अल्लाह द्वारा बनाया गया है। अल्लाह ने संपूर्ण ब्रह्माण्ड को सुंदर बनाया है और इनके माध्यम से अच्छी शक्ति का सृजन किया है। यदि व्यक्ति इस सुंदरता को पहचान जाय तो वह अपने जीवन को सुंदर बना सकता है। अल्लाह ने कोई भी चीज़ बुरी नहीं बनायी है, उसने सभी चीज़ें अच्छी और सुंदर बनायी हैं। उसने प्रत्येक को मानवमात्र की सेवा हेतु निर्मित किया है। यदि हम इस सत्य एवं वास्तविकता को देख लें, उसे पहचान जायें तब हम सुंदरता को प्राप्त कर सकेंगे।

इस प्रकार इस्लाम में भी मूल्यों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है और इसके प्रत्येक अनुयायी को इन मूल्यों के स्वयं में सृजन एवं इनके पालन को अनिवार्य बताया गया है।

मूल्य शिक्षा एवं मदरसा

(Value education and Madarsas)

मूल्य शिक्षा (Value Education)—समाज के आदर्शों एवं मूल्यों को अनुरूप व्यक्तियों को संतुष्ट करने एवं एक उत्तम जीवन की प्राप्ति हेतु शिक्षा आवश्यक रूप से व्यक्ति में मूल्य निर्माण की प्रक्रिया है। दार्शनिकों, शिक्षाविदों आदि सभी ने चरित्र निर्माण, अंतर्निहित गुणों के विकास अथवा समन्वित व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया है। हमारे देश की गौरवशाली भिन्नताओं से युक्त समृद्ध सांस्कृतिक विरासतें इन मूल्यों के निर्माण को आधार प्रदान करती हैं। इन मूल्यों के विकास एवं निर्माण हेतु प्राचीन समय से हमारे गुरूकुलों, आश्रमों एवं वर्तमान विद्यालयों में पृथक रूप से मूल्य शिक्षा देने पर ज़ोर दिया जाता रहा है।

मूल्य शिक्षा, शिक्षार्थी के चरित्र एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यह युवाओं में एक निश्चित एवं उपयुक्त समय पर मूल्यों का विकास करती है साथ ही उनमें विद्यमान जन्मजात आत्म केंद्रीयता को निःस्वार्थता, अपरिपक्वता को परिपक्वता, बाल्यावस्था को युवावस्था में परिवर्तित कर उन्हें एक मूक श्रोता से एक शक्तिशाली वक्ता में परिवर्तित करती है।

मूल्य शिक्षा व्यक्तित्व के हर पक्ष को ध्यान में रखते हुए बौद्धिक, सामाजिक, भावात्मक, नैतिक आदि सभी पक्षों के विकास में योगदान देती है। इसमें क्या सही है, क्या अच्छा है, क्या सुंदर है आदि चुनने की योग्यता विद्यमान रहती है। मूल्यपरक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बौद्धिकता के तीन आयामों- ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक आयामों के विकास से भी जुड़ा हुआ है। इसके द्वारा अधिगमकर्ता न केवल सही और अच्छे के बारे में जानता है बल्कि सही क्रियाएँ करने की दिशा में उपयुक्त भाव एवं वचनबद्धता का अनुभव करता है। यह व्यक्तिगत एवं मानवता से जुड़े ज्वलंत मुद्दों पर समालोचनात्मक चिंतन एवं स्वतंत्र निर्णय की योग्यता विकसित करने वाली प्रक्रिया है।

इस प्रकार मूल्य शिक्षा उत्तम मूल्य एवं चरित्र का विकास करने का उद्देश्य लिए हुए नियोजित शैक्षिक क्रियाओं से युक्त कार्यक्रम है। हमारी प्रत्येक क्रिया और विचार हमारे मस्तिष्क पर एक छाप छोड़ते हैं और यह छाप अथवा भाव ही किसी दिए हुए समय अथवा परिस्थिति में हमारी प्रतिक्रियाएँ एवं व्यवहार निर्धारित करते हैं। इन व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं का मिला-जुला रूप हमारे चरित्र को निर्मित एवं निर्धारित करता है। इन व्यवहारों एवं प्रतिक्रियाओं को परिमार्जित करते हुए चरित्र निर्माण प्रक्रिया को एक निश्चित एवं सही दिशा प्रदान करना ही मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। भारतीय संविधान द्वारा भी प्रस्तावना के अंतर्गत चार सार्वभौमिक मूल्यों का वर्णन किया गया है जो मूल्य शिक्षा को महत्ता प्रदान करते हैं। ये मूल्य निम्नलिखित हैं-

(i) स्वतंत्रता (Liberty) विचारों, विश्वासों, आदर्शों, भावनाओं को व्यक्त करने की स्वतंत्रता।

(ii) समानता (Equality) स्तरों, अवसरों की समानता।

(iii) बंधुत्व (Fraternity) व्यक्ति का सम्मान बनाये रखते हुए संपूर्ण राष्ट्र की एकता बनाये रखना।

(iv) न्याय (Justice) सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक किसी भी स्तर पर किसी भी वर्ग के साथ अन्याय न होने देना एवं एक व्यक्ति की स्वतंत्रता को दूसरे के मार्ग में बाधक न बनने देना।

इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 36 से 51 तक प्रदत्त मूल अधिकार एवं अनुच्छेद 51(ए) में प्रदत्त मूल कर्त्तव्य भी राष्ट्रीय मूल्यों को प्रदर्शित करते हैं जो कहीं न कहीं मुख्य अथवा उपमूल्यों के ही रूप हैं। एक निश्चित एवं सही दिशा प्रदान करना ही मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

भारत में समय-समय पर गठित विभिन्न आयोगों एवं समितियों की रिपोर्टों में भी मूल्य शिक्षा प्रदान करने पर विशेष ज़ोर दिया जाता रहा है-

स्वतंत्रता के पश्चात् गठित सर्वप्रथम आयोग, *राधाकृष्णन आयोग* (1948-49)ने मूल्य शिक्षा देने पर विशेष ज़ोर दिया है। आयोग ने विद्यालयों के साथ-साथ विश्वविद्यालयों, कॉलेजों एवं महाविद्यालयों में प्रातकाल प्रार्थना सभा करने पर ज़ोर दिया, साथ ही स्नातक स्तर पर विभिन्न महापुरुषों की जीवनियों एवं उनके विचारों को पढ़ाने पर ज़ोर दिया। (भावानुवाद—एन.सी.ई.आर टी., 2012, पृ. 2)

माध्यमिक शिक्षा आयोग अथवा मुदालियार कमीशन (1952-53) ने चरित्र निर्माण को शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित करते हुए स्पष्ट किया कि, शैक्षिक प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व एवं चरित्र का इस प्रकार प्रशिक्षण करना हो ताकि अपनी समस्त कुशलताओं को पहचानने योग्य बन सकें और समुदाय की अच्छाई में अपनी योग्यताओं के माध्यम से अपना योगदान दे सकें।

कोठारी आयोग (1964-66) ने 'शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास' पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमारे पाठ्यक्रमों में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य शिक्षा की कमी परिलक्षित होती है। आयोग ने इन मूल्यों की शिक्षा हेतु महान धर्मों के नैतिक मूल्यों एवं शिक्षाओं को जानने एवं सीखने का मार्ग दिखाया, साथ ही *श्रीप्रकाश आयोग* के सुझाव 'प्रत्यक्ष नैतिक अनुदेशन (Direct moral instruction) पर सहमति जतायी, जिसके अनुसार विद्यालयी शिक्षा में, सप्ताह में एक या दो काल-चक्र नैतिक शिक्षा के लिए होने चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने आवश्यक मूल्यों के ह्रास और समाज में बढ़ती स्वार्थपरता की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसमें सामाजिक और नैतिक मूल्यों के उत्पादन हेतु शिक्षा को एक शक्तिशाली यंत्र के रूप में प्रयोग करने पर ज़ोर दिया गया साथ ही स्पष्ट किया गया कि शिक्षा द्वारा अपने लोगों में एकता और बंधुत्व को बढ़ाने हेतु सार्वभौमिक एवं कभी समाप्त न होने वाले मूल्यों का विकास करना चाहिए। *शिक्षा नीति की कार्ययोजना* (POA-1992) में विद्यालयी शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर मूल्य शिक्षा के विभिन्न अवयवों को समन्वित करने का प्रयास किया गया।

भारत सरकार की मूल्य-आधारित शिक्षा की रिपोर्ट (छावन आयोग की रिपोर्ट, 1999) में शिक्षा में मूल्यों को समाहित करने पर विशेष ज़ोर दिया गया।

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2000) में विद्यालयी पाठ्यक्रमों में मूल्य शिक्षा को समन्वित करने पर ज़ोर दिया गया। एकता एवं बंधुत्व को बढ़ाने हेतु विद्यालयों द्वारा सार्वभौमिक मूल्यों की शिक्षा देने पर ज़ोर दिया गया, साथ ही स्पष्ट किया गया कि, संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए ताकि देश के बालक एवं बालिकाएँ अच्छा देखें, अच्छा करें एवं अच्छी वस्तुओं से प्रेम करें और पारस्परिक सहयोग के साथ जीवन निर्वाह करने वाले नागरिक बनें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में भी स्पष्ट किया गया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि विद्यालय की प्रत्येक क्रिया में मूल्य-निर्माण की झलक दिखायी दे। पाठ्यचर्या में भिन्नता में एकता एवं मानवों के बीच पारस्परिक स्वतंत्रता के प्रति हमारी वचनबद्धता को दृढ़ करने पर ज़ोर दिया गया जो कि मूल्यों का विकास कर एक बहु-सांस्कृतिक समाज में शांति, मानवता, सहनशीलता आदि गुणों का विकास कर सकें।

इस प्रकार न केवल दार्शनिकों एवं शिक्षाविदों द्वारा ही बल्कि सरकार द्वारा भी भारतीय शिक्षा प्रणाली में मूल्यों के विकास हेतु मूल्य शिक्षा प्रदान करने पर ज़ोर दिया जाता रहा है।

मदरसा शिक्षा (Madarsa Education)

भारत में मदरसा शिक्षा का विकास मुस्लिम शासन काल से देखने को मिलता है। मध्यकालीन भारत में मुस्लिम शासकों के आगमन के साथ ही भारत में मुस्लिम शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ, जिसमें गुरुकुलों अथवा आश्रमों की बजाय मदरसों अथवा मकतबों में शिक्षा दी जाती थी। ये मकतब या मदरसे किसी मस्जिद के अंतर्गत ही बने होते थे। यद्यपि वर्तमान समय में इनके स्वरूपों में परिवर्तन आ गया है और आज मस्जिदों से अलग भी किसी बड़े स्थान पर मदरसों की स्थापना की जाती है।

मदरसा शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के 'दरस' शब्द से हुई है, जिसका तात्पर्य है- व्याख्यान देना। (भावानुवाद–सिकंद 2005, पृ. 33)

सामान्यत: मदरसे वो इस्लामिक शैक्षिक संस्थाएँ हैं जो मुख्य रूप से इस्लाम में बतायी गयी विचारधाराओं, *कुरान* एवं हदीस की शिक्षा देती हैं। अपने प्रारंभिक वर्षों में मध्यकालीन भारत में स्थापित मदरसों में प्राय: *कुरान, हदीस* (पैग़ंबर मोहम्मद (स.) द्वारा बतायी गयी बातें), *शरीयत* (आचारशास्त्र) एवं अन्य इस्लामिक विचारधाराओं की ही शिक्षा दी जाती थी, परंतु वर्तमान समय में इनके अलावा ज्ञान की अन्य शाखाओं, जैसे–इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, गणित, तर्कशास्त्र, वाणिज्य एवं साथ ही साथ कंप्यूटर की भी शिक्षा प्रदान की जाने लगी है।

वर्तमान समय में भारत में लगभग 30,000 से 40,000 मदरसे संचालित हैं और इनमें परंपरागत ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान प्रदान करने की पूरी व्यवस्था की जा रही है ताकि इन्हें सरकार एवं निजी संस्थाओं द्वारा संचालित,नियमित एवं आधुनिक विद्यालयों के साथ जोड़ा जा सके और उनके जैसा ही स्थान प्रदान किया जा सके जिससे मदरसों से उत्तीर्ण होने वाले शिक्षार्थी नियमित विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से अपनी शिक्षा पूरी करने में सक्षम बन सकें।

मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा के अंतर्गत भी मूल्यों की शिक्षा पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। चूँकि इस्लाम में मूल्यों को विशेष स्थान प्राप्त है तथा इस्लाम धर्म को मानने वालों के

व्यवहार शरीयत (आचारशास्त्र) द्वारा निर्धारित किये गये हैं, इसलिए उनके व्यवहार में मूल्यों की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। परंतु आज के भौतिकवादी युग में जहाँ स्वार्थपरता, लोभ, द्वेष आदि का बोलबाला है, ऐसे समाज में कोई भी व्यक्ति चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम इन बुराइयों से अछूता नहीं है। हर कोई अपना स्वार्थ साधने में लगा है। हर कोई अपना हित और दूसरों का अहित करना चाहता है। ऐसी स्थिति में जहाँ नियमित विद्यालयों एवं उनके शिक्षकों का उत्तरदायित्व मूल्यों के विकास हेतु बढ़ जाता है, वहीं मदरसा शिक्षकों का उत्तरदायित्व भी बनता है कि वे मदरसों में पढ़ने वाले शिक्षार्थियों में मूल्यों का विकास प्रारम्भिक शिक्षा स्तर से ही करें ताकि इन मदरसों से निकलने वाले शिक्षार्थी एक सभ्य एवं ज़िम्मेदार नागरिक बनकर देश की सेवा करें न कि मदरसों के संदर्भ में व्याप्त मिथकों को सच बनने दें।

मूल्य निर्धारण में मदरसा शिक्षक की भूमिका (Role of Madarsa Teachers in Value formation)

मूल्यों पर व्याख्यान देकर मूल्यों का विकास नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार तैरना सिखाने के लिए प्रशिक्षक को स्वयं पानी में उतर कर तैराकी सिखानी पड़ती है, उसी प्रकार मूल्य शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह शिक्षार्थियों को जीवन—परिस्थितियों के जल में उतरने और अपने मूल्यों द्वारा उनका सामना करने हेतु स्वयं की क्रियाओं द्वारा प्रेरित करें। उनमें प्रयोगात्मक योग्यताओं का विकास करें एवं मूल्यों को अपने जीवन में निरंतर प्रयोग करने हेतु प्रशिक्षित करें।

इस्लाम में मूल्यों के विकास एवं उसके प्रयोग को विशेष महत्त्व दिया जाता है। शरीयत (आचारशास्त्र) द्वारा निर्धारित प्रत्येक व्यवहार मूल्य आधारित ही होते हैं। सही एवं गलत की अवधारणा को ध्यान में रखकर ही शरीयत द्वारा प्रत्येक मुसलमान के व्यवहार को निर्धारित किया गया है। पैग़ंबर हज़रत मोहम्मद (स.) स्वयं एक शिक्षक थे और उन्होंने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से अपने अनुयायियों में मूल्यो के विकास पर ही बल दिया। इस्लाम के प्रादुर्भाव से पहले अरब में चारों तरफ़ अज्ञानता का ही अंधकार फैला हुआ था।

अरबवासी केवल धन एवं भौतिक समृद्धि के लालच में ही अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस्लाम के प्रादुर्भाव और पैग़ंबर मोहम्मद (स.) की शिक्षाओं ने उन्हें जीवन के वास्तविक दर्शन और व्यवहार की निश्चित प्रणालियों का ज्ञान कराया, जो नैतिक प्रतिबंधों एवं सही व गलत के सिद्धांत पर आधारित थीं। इस्लाम के अनुसार, एक शिक्षक को अपने विद्यार्थियों में छिपी हुई योग्यताओं का ज्ञान प्राप्त कर, यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि वे नैतिक एवं बौद्धिक प्रभावों से कितनी दूर हैं, अर्थात् उसकी योग्यताएँ नैतिकता के आयामों के निकट हैं या उनसे दूर अज्ञानता एवं भौतिकता के निकट।

इसी कारण इस्लाम में धार्मिक शिक्षा पर विशेष ज़ोर दिया जाता है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति ईर्ष्या, द्वेष, घमंड, अविश्वास, झूठ आदि अवगुणों से अछूता नहीं है, इसलिए पैग़ंबर (स.) के अनुसार, मानव हृदय को दूषित करने वाली इन बुराइयों से बचाने के लिए नैतिक मूल्यों पर आधारित व्यवस्थित ज्ञान द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए (भावानुवाद, कासमी, (संपा.), 2006, पृ. 20)। यह प्रशिक्षण

कुरान एवं अन्य धार्मिक पुस्तकों जैसे हदीस आदि के माध्यम से पूर्णतया संगठित रूप में दिया जा सकता है, क्योंकि इन ग्रंथों में व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार को सही अथवा गलत के सिद्धांत की कसौटी पर परखा जाता है। अत: इस मिथक पर भी विश्वास नहीं किया जाना चाहिए कि *कुरान* एवं *हदीस* जैसे ग्रंथ धर्म के प्रचार-प्रसार अथवा धार्मिक ज्ञान से जुड़ी शिक्षाएँ ही प्रदान करते हैं।

मूल्य निर्धारण में जहाँ इन ग्रंथों का विशेष योगदान है, वहीं शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। चूँकि आज के समय में भी अधिकांश मुस्लिम बच्चे मदरसों में ही शिक्षा ग्रहण करते हैं और मदरसे आज भी मुस्लिम समुदाय की शिक्षा का प्रमुख केंद्र हैं अत: ऐसी परिस्थिति में मदरसा शिक्षकों का दायित्व भी बढ़ जाता है कि वे इन मदरसों में शिक्षा प्राप्त करने वाले बालक-बालिकाओं में विभिन्न तकनीकों के माध्यम से मूल्यों का विकास करें। मूल्य निर्धारण में मदरसा शिक्षकों की भूमिकाओं को निम्नलिखित रूपों में स्पष्टतया समझा जा सकता है–

1. **शिक्षार्थियों को प्रेरित करना (To motivate the students)** शिक्षक अपने शिक्षार्थियों के लिए आदर्श होता है अत: मदरसा शिक्षकों को भी अपने व्यवहार, विचार आदि के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए। स्वयं नमाज़ और रोज़े का पाबंद (पूर्ण समर्पित भाव से पालन करना) होना चाहिए, क्योंकि *कुरान* में नमाज़ पढ़ने और रोज़े रखते समय प्रत्येक बुराई से और बुरे विचारों से दूर रहने की सीख दी गयी है। जिससे शिक्षार्थी भी नमाज़ और रोज़े के माध्यम से प्रत्येक बुराई से दूर रहने के लिए प्रेरित होंगे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि नमाज़ और रोज़ा इस्लाम में मूल्य निर्माण के प्रमुख स्रोत हैं।
2. **पैग़ंबरों, उलेमाओं की जीवनियों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना (Give examples of the life sketch of Prophets and Ulamas)**मदरसा शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों में सहायता, परोपकार, किसी का अधिकार न छीनना आदि गुणों का विकास करने हेतु पैग़ंबरों (अल्लाह के प्रतिनिधि), सहाबियों (पैग़ंबर मोहम्मद (स.) के बताए मार्गों पर चलने वाले उनके समकालीन) एवं उलेमाओं आदि का उदाहरण एवं उनके जीवन परिचय से अवगत कराना चाहिए।
3. विभिन्न नैतिक गुणों का विकास करना (To develop various moral virtues) मदरसा शिक्षकों को अपने शिक्षार्थियों में शांति, प्रेम, धर्मनिरपेक्षता, एकता, सहयोग, सांस्कृतिक संवर्धन, सृजनात्मकता, राष्ट्रीय एकता एवं बंधुत्व आदि गुणों के विकास हेतु निरंतर प्रयास करना चाहिए। इस हेतु उन्हें अपने समुदाय के साथ-साथ अपने समाज व राष्ट्र को भी अपना समझने और उसके विकास हेतु योगदान देने की सीख देनी चाहिए।
4. **शिक्षार्थियों को उत्पादक एवं सृजनात्मक क्रियाओं में संलग्न करना (Indulge the students in productive and creative activities)**
मदरसा शिक्षकों को सतही ज्ञान से हटकर मूलभूत आदर्शों, मूल्यों के विकास हेतु अपने

विद्यार्थियों के अंतर्निहित गुणों-अवगुणों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें सृजनात्मक एवं उत्पादक क्रियाओं में संलग्न करना चाहिए।

5. **सहपाठ्यचारी क्रियाओं पर बल देना (Give emphasis on co-curricular activities)**

   मदरसो में पाठ्यक्रम का पूर्ण ज्ञान देने के साथ-साथ सहपाठ्यचारी क्रियाओं, जैसे—समूह कार्य, हस्तकौशल आदि का भी प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए।

6. **आत्म—सम्मान का भाव विकसित करना (To develop the feeling of self respect)**

   मदरसा शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों के व्यक्तिगत गुणों का सम्मान करते हुए उनमें आत्म—सम्मान व आत्म—प्रकाशन के भाव विकसित करने चाहिए। इसके लिए उन्हें अपने विद्यार्थियों को हीनदृष्टि से न दखते हुए उन्हें श्रेष्ठता प्रदान करनी चाहिए।

7. **अपने विचार प्रकट करने के अवसर देना (Give opportunities to experess their ideas)**

   मदरसे में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को भी अपने विचारों को प्रकट करने के अवसर एवं उनको मूर्त रूप देने हेतु हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। इस हेतु सप्ताह में एक दिन के क्रियाकलाप ऐसे हों, जिनमें ये विद्यार्थी, अपने विचारों को प्रकट करें अथवा अपने विचारों को मूर्त रूप देने हेतु कुछ क्रियात्मक प्रयास करें।

8. **शिक्षकों द्वारा पूर्ण समर्पण भाव से शिक्षा देना (Give education with full dedication by the teachers)**

   मदरसा शिक्षकों को मदरसों की शिक्षा व्यवस्था के संचालन में खानापूर्ति न करते हुए पूर्ण समर्पण भाव से अपने विद्यार्थियों को शिक्षित करना चाहिए और उनके अंतर्निहित गुणों को उजागर करते हुए सही दिशा में विकास हेतु उनका मागदर्शन करना चाहिए।

9. **अनुशासन बनाये रखना (To maintain discipline)**

   मदरसों के अनुशासनहीन छात्रों को केवल दंड देकर ही अनुशासित नहीं किया जा सकता बल्कि उनके नकारात्मक गुणों के अंत हेतु उन्हें इस बात का अहसास कराया जाय कि उनके व्यवहार गलत हैं। उनके नकारात्मक व्यवहारों के अंत हेतु उनकी योग्यताओं का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें अन्य सृजनात्मक क्रियाओं में संलग्न किया जाये ताकि उनके नकारात्मक व्यवहारों को पनपने का अवसर न मिल सके।

10. **पूर्ण मानव निर्माण की शिक्षा (Education for making complete man)**

    मदरसा शिक्षा पूर्ण मानव निर्माण की शिक्षा होनी चाहिए। इस हेतु मदरसा शिक्षकों को पूर्ण समर्पण भाव से प्रयास करना चाहिए और अपने विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों के विकास के माध्यम से उनका चरित्र निर्माण करना चाहिए। साथ ही विद्यार्थियों के

शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक विकास द्वारा उनको पूर्ण मानव बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion)

मूल्यों के निर्माण में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है और इस्लाम में शिक्षा को विशेष स्थान दिया गया है। शिक्षा के माध्यम से न केवल धार्मिक बल्कि आधुनिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अतः विभिन्न प्रकार के ज्ञान के संप्रेषण एवं विद्यार्थियों में मूल्य निर्माण में मदरसा–शिक्षकों की भूमिका बढ़ जाती है। चूँकि वर्तमान समय में भी मुस्लिम समुदाय में मदरसे प्रमुख शैक्षिक संस्थानों के रूप में संचालित हैं, अतः इनके शिक्षकों का कार्य न केवल शिक्षा प्रदान करने में बल्कि विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण, विभिन्न नैतिक मूल्यों के विकास हेतु काफ़ी महत्वपूर्ण हो जाता है ताकि इन मदरसों से निकलने वाले छात्र न केवल नियमित विद्यालयों, महाविद्यालयों में समाहित हो सकें बल्कि राष्ट्र के कुशल एवं ज़िम्मेदार नागरिक बन सकें और मदरसों के छात्रों एवं मदरसों से जुड़े मिथकों अथवा वर्तमान में प्रचलित धारणाओं को झूठा साबित कर सकें।

संदर्भ

अख़्तर, परवेज़. 1998. *मुस्लिम समुदाय में शैक्षिक पिछड़ापन (वाराणसी नगर पर आधारित एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन),* अप्रकाशित पीएचडी रिसर्च, सोशियोलॉजी, बी.एच.यू. वाराणसी.

एनसीईआरटी. 2012. *एजूकेशन फ़ोर वेल्यूज़ इन स्कूल्स्–ए फ्रेमवर्क* नयी दिल्ली.

करजावी, अल्लामा यूसुफ़. 2000. तालीम की अहमियत. मर्काज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.

काज़मी, ए.एच. (एड.). 2006. *इंटरनेशनल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ इस्लाम.* इस्लाम इस्लाम एंड एजुकेशन (वॉल-VIII), ईशा बुक्स, नयी दिल्ली.

''कॉन्सेप्ट ऑफ़ रियेलिटी, नॉलेज एंड वेल्यू इन इस्लाम'', रिट्राइव्ड जुलाई 4, 2013, फ़्रॉम http://.www.edu.blogspot.in/search/label/concept%200F%20 REALITY.

कुमार, सतीश. 2009. *इन्कलकेशन ऑफ़ ह्यूमन वेल्यूज़ इन एजुकेशन,* थॉमसकुट्टि, पी.जी. एंड जॉर्ज, मैरी (एड). ह्यूमन राइट्स एंड वेल्यू इन एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नयी दिल्ली.

फ़ैज़ल, पी.एन. 2009 वेल्यूज़ इनकलकेटिंग अमंग हायर सेकेंडरी स्टूडेंट्स (ए सेंटरड् एपरोच). थॉमसकुट्टि, पी.जी. एंड जॉर्ज, मैरी (एड.). ह्यूमन राइट्स एंड वेल्यू इन एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नयी दिल्ली.

भास्कराचार्युलु, वाई एंड राव, डी. पुल्ला. 2009. द *रोल ऑफ़ टीचर्स इन स्ट्रेंथनिंग वेल्यू एजुकेशन.* थॉमसकुट्टि, पी.जी. एंड जॉर्ज. मैरी (एड.). ह्यूमन राइट्स एंड वेल्यू इन एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नयी दिल्ली.

राय, गीता. 2005. *भारतीय चिंतन एवं शिक्षा.* द ओ.एस.डी. (पब्लिकेशन सैल), बीएचयू, वाराणसी.

सिंकद, योगिन्दर. 2005. *बेस्टिअनस् ऑफ़ द बिलीवर्स, मदरसाज़ एंड इस्लामिक इंस्टीट्यूशन इन इंडिया.* पेंगुइन बुक्स, नयी दिल्ली.

सुकुमार, सेमुअल. 2009. वेल्यू एजुकेशन इन करिक्यूलम. थॉमसकुट्टि, पी.जी. एंड जॉर्ज, मैरी (एड.). ह्यूमन राइट्स एंड वेल्यू इन एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नयी दिल्ली.

लघु, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाएँ तथा भाषा–नीति व बहुभाषिक शिक्षा

संजय कुमार सुमन*

भारत में लघु, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं का महत्त्व जग-ज़ाहिर है। इसमें भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर छिपी हुई है। इनके समुचित संरक्षण और विकास से बहुत अधिक फायदा हो सकता है। लेकिन दुर्भाग्यवश भारतीय भाषिक परिवेश में इन लघु, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं के सामने आज का अस्तित्व संकट उपस्थित हो गया है। केंद्र और राज्य सरकारों तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा हालाँकि भाषा के विकास हेतु पिछले कई वर्षों से अनगिनत कार्यक्रमों, योजनाओं, नीतियों और नियमों को क्रियान्वित किए जाने का प्रयास हुआ है। मगर फिर भी इनके ऊपर ह्रास और विनाश का खतरा कम नहीं हुआ है। इस लेख में इस दिशा में अब तक के किए गए प्रयासों को संतोष्रपद नहीं मानते हुए इसके लिए स्वतंत्र भाषानीति और अकादमी की ज़रूरत पर ज़ोर देने की कोशिश की गयी है। इससे भाषायी संकट के समाधान की दिशा में कुछ ठोस और महत्वपूर्ण प्रयास किए जा सकते हैं, जिससे न केवल लघु, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं को, बल्कि सभी भारतीय भाषाओं को भी लाभ होगा। इससे बहुभाषा-भाषी भारतीय परिवेश में बहुभाषिक शिक्षा योजना की दिशा का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

विभिन्न आयोगों/नीतियों के परिप्रेक्ष्य में भाषा

भारत में स्वतंत्रता के बाद जितनी भी राष्ट्रीय योजनाएँ बनी हैं, उनमें राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय चेतना की प्राप्ति के लिए शिक्षा के क्षेत्र को एक आवश्यक और महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में चिह्नित किया गया है। उसमें भाषाओं के महत्त्व को स्वीकारते हुए भाषानीतियों के निर्माण, क्रियान्वयन और संवर्धन का भी प्रयास किया गया है। इस संबंध में अलग-अलग आयोगों और समितियों के सुझावों पर ध्यान देकर हम अपने बहुभाषी समाज में आज बहुभाषी शिक्षा और लघु, अल्पसंख्यक तथा आदिवासी भाषाओं के सुधार तथा विकास के बारे में कुछ महत्वपूर्ण प्रयास कर सकते हैं।

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर* (हिंदी), भाषा शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली

डॉ. राधा कृष्णन आयोग (1948) ने अपने महत्वपूर्ण सुझाव में कहा था कि (1) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रों को तीन भाषाओं का ज्ञान कराया जाये–

(क) प्रादेशिक भाषा

(ख) संघीय भाषा

(ग) अहिंदी भाषा

इसके अतिरिक्त उनका यह भी सुझाव था कि विश्वविद्यालय स्तर पर सभी कक्षाओं में हिंदी की शिक्षा दी जाये।

मुदालियार आयोग (1952-53) ने द्विभाषा सूत्र प्रस्तुत किया और सुझाव दिया कि माध्यमिक स्तर पर छात्र कम से कम दो भाषाओं का अध्ययन करें। एक मातृभाषा और दूसरी हिंदी। जहाँ हिंदी मातृभाषा हो वहाँ किसी अन्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन कराया जाये। आयोग ने यह भी कहा कि अंग्रेज़ी और संस्कृत को वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाया जाये।

बी.जी. खरे की अध्यक्षता में गठित *भाषा आयोग* (1955) ने समस्त विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिंदी बनाने का सुझाव दिया एवं उच्च स्तरीय प्रतियोगिताओं, जैसे– आई.ए.एस. में भी वैकल्पिक माध्यम के रूप में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को स्थान देने की सलाह दी।

केंद्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् (1956) ने त्रिभाषा सूत्र प्रस्तुत किया। इसके अनुसार माध्यमिक स्तर के प्रत्येक छात्र को तीन भाषाओं का ज्ञान कराया जाना चाहिए–

(i) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

(ii) अंग्रेज़ी या अन्य आधुनिक विदेशी भाषा

(iii) हिंदी भाषा अहिंदी भाषी क्षेत्रों के लिए और कोई भारतीय भाषा हिंदी क्षेत्रों के लिए।

कोठारी आयोग (1964-66) ने भी त्रिभाषा सूत्र का सुझाव दिया। उसके अनुसार छात्र कक्षा 1 से 10 तक तीन भाषाओं का अध्ययन करें। मातृभाषा हिंदी और अंग्रेज़ी (राजभाषा के रूप में)। साथ ही आयोग ने सुझाव दिया कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मातृभाषा की शिक्षा को माध्यम बनाया जाये किंतु विश्वविद्यालय स्तर पर अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाये।

शिक्षा आयोग (1964) ने अपने प्रतिवेदन में त्रिभाषा सूत्र की सिफ़ारिश की जो इस प्रकार है– (1) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा (2) केंद्र की राजभाषा या सह राजभाषा (3) एक आधुनिक भारतीय भाषा या विदेशी भाषा जिसे (1) या (2) में न रखा गया हो और जो शिक्षा के माध्यम से भिन्न हो।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भी कहा गया है कि *''भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए, केवल कई भाषाओं के अर्थ में ही नहीं, बल्कि रणनीति तैयार करने के लिहाज से भी ताकि कक्षा को एक संसाधन के तौर पर प्रयोग में लाया जाए। त्रिभाषा फार्मूले को उसके मूलभाव के साथ लागू किए जाने की ज़रूरत है, ताकि वह बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ावा दे। गैर-हिंदीभाषी राज्यों में बच्चे हिंदी सीखते हैं। हिंदी प्रदेशों के मामलों में बच्चे वह भाषा सीखें जो उस इलाके में नहीं बोली जाती है। इन भाषाओं के अलावा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया जा सकता है। बाद के स्तरों पर शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं से परिचय करवाया जा सकता है।''* (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, एनसीईआरटी, नयी दिल्ली)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में यह भी कहा गया है कि त्रिभाषा का *''प्राथमिक उद्देश्य भारत में बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव का प्रसार है। निम्नलिखित दिशा-निर्देश इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं। बच्चों की घरेलू भाषाओं को स्कूल में शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। अगर स्कूल में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषाओं में शिक्षण की व्यवस्था न हो, तो प्राथमिक स्तर की स्कूली शिक्षा अवश्य घरेलू भाषाओं के माध्यम से ही दी जाए। यह आवश्यक है कि हम बच्चों की घरेलू भाषाओं को सम्मान दें।''* हमारे संविधान की धारा 350 'क' के मुताबिक *''प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकार भाषायी अल्पसंख्यक बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधा की व्यवस्था करने के लिए प्रयास करेगा। बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।''*

भाषा– वैश्विक परिप्रेक्ष्य

यूनेस्को के विश्वभाषाओं के मानचित्र के नवीनतम संस्करण में बताया गया है कि ''विश्व की 6000 भाषाओं में से लगभग 2500 भाषाएँ या तो लुप्तप्राय: स्थिति में हैं या खतरे में हैं। इसमें से 538 तो बहुत अधिक खतरे में हैं, 502 बुरी तरह से खतरे में हैं, 632 निश्चित तौर पर खतरे में हैं और 607 असुरक्षित हैं। उसी में यह भी बताया गया है कि भारतीय भाषायी परिवेश की कुल 196 भाषाएँ जो यूनेस्को के नक्शे में शामिल हैं, उसमें से 84 असुरक्षित हैं, 62 निश्चित तौर पर खतरे में हैं, 6 बुरी तरह से खतरे में हैं, 35 अत्यंत ही खतरे में हैं और 9 तो विलुप्तु ही हैं। (1950 से ही)।'' (एन एप्राईज़ल ऑफ़ द लिंग्विस्टिक्स राइट्स ऑफ़ माइनॉरिटीज़ इन इंडिया-2013, थॉमस वेनेडिक्टर)। इसी तरह हम देखें तो भारत में ''आठवीं सूची में सूचीबद्ध 22 भाषाएँ और 100 के आसपास असूचीबद्ध भाषाएँ हैं। भारत की पूरी आबादी के 96.56% का कोई न कोई सूचीबद्ध भाषा ही उसकी मातृभाषा है जबकि 3.44% आबादी के लिए असूचीबद्ध भाषाएँ ही मातृभाषाएँ हैं। इसी तरह लगभग 234 मातृभाषाएँ चिह्नित हुई हैं जिसको राष्ट्रीय स्तर पर बोलनेवालों की संख्या लगभग 10,000 है। इस तरह 93 मातृभाषाएँ सूचीबद्ध भाषाओं में और 41 मातृभाषाएँ असूचीबद्ध भाषाओं में सूचीबद्ध हैं। कुछ वैसी भी हैं जो मातृभाषाएँ हैं, जिनको 10,000 से भी कम बोलने वाले हैं। (ए. के. मिश्रा, ट्राईबल लैंग्वेज एंड ट्राइबल लैंग्वेज एजुकेशन एट एलिमेंट्री लेबल इन इंडिया) भारतीय भाषाओं का शिक्षण के आधार-पत्र में अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं पर विचार करते हुए कहा गया है कि *''अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं को बोलने वाले प्रारूप अपनी भाषा से वंचित कर दिए जाने के शिकार होते हैं। जबकि हमें यह भलीभाँति जान लेना चाहिए कि अंग्रेज़ी सहित 39 देश की प्रमुख भाषाएँ इनके साथ रहकर ही फल-फूल सकती हैं, न कि इनकी कीमत पर। यह धारणा कि एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास में भी सहायक होता है, इससे हम उम्मीद कर सकते हैं कि भाषिक विविधता वाले आदिवासी इलाकों के मामले में कुछ भाषाओं का विकास शेष भाषाओं को बल प्रदान कर सकता है, साथ ही इनको बोलने वालों को सचेतन रूप से इस ओर रुख करने के लिए प्रेरित भी।''*

भाषा का संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

भारत का संविधान भारत की सभी अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं की सुरक्षा का दावा करता है, क्योंकि वह बहुभाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देता है। भारतीय संविधान की धारा 29 में कहा गया है कि *''कोई भी भारत का नागरिक जो भारत के भीतर या भारत के किसी भी क्षेत्र में रहता है और अपनी अलग भाषा-लिपि और संस्कृति रखता है, उसे उसको व्यवहारित और सुरक्षित करने का अधिकार होगा।''*

धारा 30 तो अल्प संख्यकों को इन भाषाओं की शिक्षा के द्वारा इसके विकास और प्रयास का अधिकार व सुरक्षा देती है। इसमें कहा गया है कि *''सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वह धर्म पर आधारित हों या भाषा पर, उसे अपनी पसंद की शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और संचालन का अधिकार होगा।''*

धारा 350 'क' के अनुसार *''प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकार भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।''*

धारा 345 किसी भी राज्य को स्वतंत्रता देती है कि वह अपने कानून द्वारा अपने राज्य के भीतर हिंदी या किसी अन्य भाषा को कार्यालयी भाषा का दर्जा दे। यही नहीं धारा 120 तो भारतीय संसद में सांसदों को अपनी मातृभाषा में व्यवहार करने की छूट देती है।

इन भारतीय संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भी भारत में भाषायी परिवेश की स्थिति अत्यंत ही दु:खदायी है, क्योंकि कुछ भाषाएँ ही शिक्षा, व्यवसाय, कार्यालय और अन्य क्षेत्रों में प्रचलन में होकर अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं और कुछ तो स्थानीय प्रचलन तक ही सीमित होकर अपने अस्तित्व को खोने के डर से बीच में ही दम तोड़ रही हैं। भारतीय बहुभाषिक परिवेश में बहुभाषाओं का प्रचलन उचित है मगर उसमें कुछ भाषाएँ ही बहुत कुछ करें और कुछ बिलकुल ही कम और नगण्य भूमिका प्रदान करें तो यह अच्छी स्थिति नहीं कही जा सकती है। हम यह नहीं कहते कि भाषायी प्रचलन में शत–प्रतिशत समानता और न्याय वाली व्यवस्था ही कायम हो जाय। मगर कहीं किसी स्तर पर भाषायी अन्याय न हो इसकी तो अवश्य कोशिश की जानी चाहिए। भारतीय भाषाविद् डी.पी. पटनायक का भी कहना है कि *''बहुभाषिक संदर्भ में भाषाओं का व्यवहार असमानता भरे समाजों के निर्माण के लिए एक प्रमुख कारक हो सकता है। जब तक यह असमानता रहेगी। शिक्षा कभी भी विवादों से मुक्त नहीं होगी।''* इसलिए उन्होंने यह भी कहा कि *''बहुभाषिकता मात्र अन्य को सम्मान देने की नींव पर ही सफ़ल हो सकती है।'' (पटनायक 1990, लैंग्वेज एंड सोशल इश्यू*

भाषा से जुड़े सरोकार

इसमें कोई दो मत नहीं कि आदिवासी भाषाएँ, अल्पसंख्यक और लघु भाषाओं की स्थिति भारत में ठीक नहीं है क्योंकि उनमें से अधिकांश को मातृभाषाओं के रूप में शिक्षा के माध्यम और कार्यालयी कामकाज के लिए राज्य की मान्यताप्राप्त भाषाओं में स्थान नहीं दिया गया है। इसको न तो राज्यों के द्वारा समुचित दर्जा मिला है और ना ही शिक्षा में ही माध्यम के

रूप में इसे प्रयोग किया जा रहा है। अधिकतर विद्वान और भाषाविदों की मान्यता है कि इस स्थिति में अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाएँ 'भाषायी विनाश' का शिकार हो रही हैं और उनके अस्तित्व को ही खतरा होने से वे अपने आसपास की दबंग भाषाओं की ओर रुख करने को मजबूर हैं। ''बहुभाषिक देशों में कई वजहों से भाषा आसानी से राजनीति का मुद्दा बन जाती है। पहला, भाषा रख-रखाव या भाषिक उन्नति के परिणाम से भाषायी खतरा, भाषा की योजना और भाषायी चयन के द्वारा सांस्कृतिक, सामूहिक और वैयक्तिक पहचान का संकट उत्पन्न हो जाता है। इससे भाषा का राजनीतिकरण होता है। दूसरा, पद-प्रतिष्ठा और पैसों की प्राप्ति के दृष्टिकोण से भी समाज में भाषाओं का प्रभावशाली होने की प्रक्रिया भी भाषा को राजनीतिकरण की ओर को धकेलती है। तीसरा, राजनीतिक ताकत के लिए भी भाषा को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। साम्राज्यवादियों के द्वारा शासितों पर जबरन भाषाओं का थोपना और राष्ट्रवादियों द्वारा इसका विरोध किये जाने के उदाहरण को देखा जा सकता है।

चौथा, भाषा धार्मिक कर्मकांड का हथियार के रूप में भी इस्तेमाल होने से राजनीतिक होती है। इस्लाम की भाषा अरबी, सिक्खों की गुरुमुखी लिपि में पंजाबी, ब्रह्मसमाज के लिए बंगाली और आर्य समाजी हिंदुओं के लिए हिंदी। ऐसी स्थिति में भाषा मजबूर है कि वह राजनीतिक हो।'' ''डी. पी. पटनायक, लैंग्वेज एंड पॉलिटिक्स)

भारतीय भाषिक परिवेश में भी भाषाओं के राजनीतिक होने का उदाहरण मिलता है। इसलिए यूनेस्को का भी मानना है कि *''ऐसी स्थिति जहाँ माता-पिता निरक्षर हों। यदि स्कूल में पढ़ाने का माध्यम वह भाषा हो जो घर में न बोली जाय तो गरीबी ग्रसित शिक्षण के परिवेश में समस्याएँ और भी बढ़नेवाली हो जाती हैं और इससे लगातार 'ड्रॉप आउट' बढ़ने की स्थिति बलवती होती है।''* (एजुकेशन फ़ॉर ऑल, पॉलिसी लोकेशन फ्रॉम हाई अचीविंग कंट्रीज़ यूनिसेफ़ स्टाफ़ वर्किंग पेपर्स, न्यूयॉर्क, यूनिसेफ़)

इस स्थिति में ज़ाहिर है कि शिक्षा भी संतुलित और सुव्यवस्थित स्थिति में नहीं हो सकती। यही वजह है कि भारत में सभी शैक्षणिक स्तरों का परिवेश भी सुखद नहीं है। भारत में भाषायी व्यवहार के क्षेत्र में वर्चस्ववादी वातावरण का माहौल है, जिससे बहुभाषिकता के सही माहौल को कायम करने में परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। भारत में अल्प और अल्पसंख्यक भाषाओं के बारे में भी कई अवधारणाएँ हैं। कुछ विद्वान संख्या के आधार पर तो कुछ प्रचार और प्रसार की व्यापकता के आधार पर अल्प और अल्पसंख्यक भाषाओं का निर्धारण करते हैं। बहुमत के आधार पर अधिकांशतः आदिवासी भाषाएँ ही अल्प और अल्पसंख्यक भाषाओं की श्रेणी में संबद्ध की जा सकती है। इसमें अधिकांशतः खतरे में है। यह सच्चाई हमारे राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों और विद्वतजनों को पता है। जब सभी भाषाओं में ज्ञान के कारक होने की बात सभी स्वीकारते हैं तो इन भाषाओं के खतरे में होने से ज्ञान के किसी अवयव के खतरे में होने की संभावनाओं से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इस तरह भाषायी खतरे से हमारे ज्ञान के खतरे के ज़िम्मेवार कारकों पर भी चिंता की जाती रही है, जिसके लिए भाषा नीतियों, आधुनिकता, भाषाप्रयोक्ता वर्ग की

मानसिकता और भाषा और अस्तित्व की पहचान आदि की ओर इशारा भर कर दिया जाता है। इसी क्रम में ऊपर की भाषा नीतियों के सभी सूत्रों और संकल्पों को भी देखा जा सकता है।

'*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005* के अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति–सामाजिक संदर्भ और वर्तमान शैक्षणिक परिस्थिति' के आधारपत्र में भाषा के संदर्भ में कहा गया है कि–

(क) स्कूली शिक्षा के आरंभिक वर्षो में मातृभाषा ही संप्रेषण का माध्यम होनी चाहिए। यह बच्चों के लिए स्कूल में उचित माहौल बनाने और सीखने के लिए अत्यंत अनिवार्य है। इसके पीछे शिक्षा शास्त्रीय धारणा यह है कि जिसका ज्ञान है, उससे जिसका ज्ञान नहीं की ओर की यात्रा सीखने को आसान करती है। भाषा वह महत्वपूर्ण संसाधन है जो बच्चा अपने साथ लाता है और जो विचार संप्रेषण व समझने को संभव करता है।

(ख) बच्चों के आत्म-विश्वास व आत्म-सम्मान को बढ़ावा देने के लिए भी मातृभाषा का प्रयोग कक्षा में ज़रूरी है।

(ग) क्षेत्रीय भाषा की तरफ़ की यात्रा मातृभाषा से ही हो सकती है।

(घ) जहाँ भी किसी गाँव में एक से ज़्यादा आदिवासी भाषाएँ बोली जाती हों वहाँ सलाह-मशवरा करके ग्रामीणों से या तो स्थानीय संपर्क भाषा को या बहुसंख्ययकों की भाषा का उपयोग होना चाहिए।

(ङ) शिक्षकों के प्रशिक्षण के दौरान उस स्थानीय बोली में परीक्षा पास करना अनिवार्य कर देना चाहिए, जहाँ उसकी बहाली होने वाली हो। पहले सिविल सर्विस पास करने वालों को आदिवासी इलाके में पोस्टिंग से पहले कम से कम एक आदिवासी भाषा में परीक्षा पास करना अनिवार्य था।

इसी तरह 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण' के आधारपत्र में भी अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं के तहत कुछ संकल्पनाएँ देखी जा सकती हैं, जहाँ कहा गया है कि ''यह प्रलेख इसलिए उम्मीद करता है कि ऐसा समय आएगा, जब महज़ बोली जाने वाली भाषाएँ (अलिखित) स्कूलों में जगह पाएँगी और अपना अलग वर्ण-विन्यास, व्याकरण और शब्दकोश विकसित करेंगी। भले ही इनके मानक रूप अनुपस्थित हों, वे साहित्यिक उद्यम के लिए उपलब्ध औज़ार बन सकेंगी जो स्वतंत्र अभिव्यक्ति को सभी आयामों में विकसित होने का अवसर देती हैं और प्रत्येक भाषा में ज्ञान के आधार को मजबूत करती हैं।

यह उद्यम आगे बढ़कर सभी स्तरों की शिक्षा और जनसंचार में इन भाषाओं को नयी तरह की संप्रेषणकारी भूमिकाएँ व प्रकार्य सौंपकर इन भाषाओं की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए उन्मुख होना चाहिए। बहुत सारी भाषाएँ खतरे में हैं। बहुभाषिकतावाद को बनाए रखने के हमारे दावों के बावजूद कुछ भाषाएँ वास्तव में भारतीय भाषिक मंच से गायब हो गईं। एक भाषा को खोने का अर्थ है- इसके साथ संबद्ध पूरी की पूरी साहित्यिक व सांस्कृतिक परंपरा का नष्ट होना।''

कहने के लिए संवैधानिक और शैक्षणिक दस्तावेज़ों और दावों की कमी नहीं है और शोध तथा अनुसंधान के माध्यमों से मातृभाषा प्रयोग के

महत्त्व और आवश्यकता समेत अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं की समृद्धि और विकास के स्रोत व संभावनाओं व सीमाओ पर भी हज़ार तथ्य, कथ्य और संभावनाएँ मिल जाएँगी। भारतीय और दुनिया के भाषाविदों व शिक्षाविदों के महत्वपूर्ण शोध सत्यों और स्थापनाओं से भी कई हज़ार आँकड़े प्रस्तुत किए जा सकते हैं। मगर उन संकल्पों को व्यवहार और मूर्त रूप में क्रियान्वित करने में कितनी बाधाएँ हैं, ये कम से कम प्रबुद्ध शिक्षितजनों से वंचित नहीं है क्योंकि वे भलीभाँति जानते हैं कि त्रिभाषा सूत्र भारत में हूबहू सफ़ल नहीं हैं।

एन.सी.ई.आर.टी. के भाषा शिक्षा विभाग द्वारा भी इस पर अभी नवीन शोध किया गया है जिसमें इसके सही क्रियान्वयन पर प्रश्न चिह्न की बात को स्वीकारा गया है। 2006 के दौरान ही परिषद् द्वारा प्रोफ़ेसर अवधेश कुमार मिश्रा द्वारा 'ट्राईबल लैंग्वेज़ एंड ट्राईबल लैंग्वेज एजुकेशन एट एलीमेंट्री लेबल इन इंडिया' विषय पर अध्ययन किया गया जो अब पुस्तक रूप में भी उपलब्ध है। इसमें भी कहा गया है कि ''122 भाषाओं (भारत का जनसंख्या आयोग द्वारा 2001 में उल्लेखित) और 234 मातृभाषाओं में मात्र 40 (अंग्रेज़ी समेत) भाषाएँ ही प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में व्यवहृत की जाती है।

सिर्फ 23 आदिवासी भाषाएँ शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं। अभी तक प्रयोग में आनेवाली आदिवासी भाषा जो मातृभाषा के रूप में भी प्रयोग में है, वह है 'बोडो'। हालाँकि झारखण्ड और पश्चिम बंगाल में राज्य द्वारा संथाली को शिक्षा का माध्यम के रूप में व्यवहार करने के लिए चिह्नित किया गया है। सरकारी निर्णय को अभी भी लागू किया जाना बाकी है। यही सच्चाई चार असूचीबद्ध आदिवासी भाषाओं की है जिसमें हो, खड़िया, कुडूक और मुंडारी भाषा है जिसका झारखण्ड राज्य में अभी I से III वर्गों के बीच शिक्षा का माध्यम के रूप में व्यवहार किया जाना है। जिसका परिणाम है कि अधिकांशतः आदिवासी बच्चे अपरिचित भाषाओं को माध्यम के रूप में पढ़ने के लिए मज़बूर हैं। बहुत ही अच्छा उदाहरण यह है कि सहस्त्रों भीली बच्चे गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्य प्रदेश में हिंदी, गुजराती और मराठी को माध्यम के रूप में पढ़ने को विवश हैं।

हो, खड़िया, कुडूक, मुंडारी और संथाली बोलने वाले बच्चे झारखण्ड में हिंदी को माध्यम के रूप में पढ़ने को विवश हैं। आदि, निशिं, अपातानी, मिशमी, मोंपा, सिंफ, नॉकटे, वाँचू आदि बोलने वाले बच्चे अरुणाचल प्रदेश में अंग्रेज़ी को माध्यम के रूप में पढ़ते हैं। दिवाशा, कारबी, मिशिंग, देवटी, सादरी आदि बोलने वाले बच्चे असम में असमिया को माध्यम के रूप में पढ़ते हैं। पश्चिम बंगाल में संथाली बोलने वाले बच्चे बांग्ला को माध्यम के रूप में पढ़ते हैं।'' (ट्राईबल लैंग्वेज एंड ट्राईबल लैंग्वेज एजुकेशन एट एलीमेंट्री लेवल इन इंडिया, डॉ. अवधेश कुमार मिश्रा पृ. 101)

मिश्रा जी के अध्ययन में ही पाया गया है कि आदिवासी भाषाओं को विशेष तौर पर पढ़ाने के लिए कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकांश जगहों में शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई। शिक्षकों को आदिवासी भाषा विशेष को पढ़ाने के लिए विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया गया। शिक्षकों को किसी भी विषय को पढ़ाने के लिए बी.एड. की

डिग्री दी जाती है मगर उनको किसी भी स्तर पर आदिवासी भाषाओं को पढ़ाने का विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। उनके लिए विशेष स्तर की पाठ्यपुस्तकों को प्रदान करने का भी कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया। कुछ धार्मिक और सामुदायिक संगठनों द्वारा स्वतंत्र रूप से कुछ प्राइमर बनाने का भी उदाहरण मिलता है, जिसमें या तो अंग्रेज़ी या हिंदी की विषय-वस्तुओं की नकल होती है और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों के औचित्य का कोई सवाल ही नहीं होता। एन.सी.ई.आर.टी./सी.आई.टी. और डाईट जैसी संस्थाओं को उनकी क्षेत्रीय विविधताओं को बारीकी से देखकर प्रशिक्षण के लिए निर्णय लेने की ज़रूरत है। शिक्षा का माध्यम के लिए भाषाओं के चयन में समुदायों के निर्णयों और सुझावों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

अपरिचित भाषाओं के साथ शिक्षा को माध्यम के रूप में पढ़ाने की प्रक्रिया को छोड़ा जाना चाहिए। इसी के साथ उस अध्याय में यह भी पाया गया है कि त्रिभाषा सूत्र वहाँ बिलकुल ही असफ़ल हो जाता है जहाँ आदिवासी भाषा मातृभाषा हो और उसकी लिपि न हो। इसलिए उन्होंने शिक्षकों के लिए भाषिक विकास और पाठ्यचर्या/प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल देने की सिफ़ारिश भी की है।

इस तरह हम पाते हैं कि आज़ादी के बाद संवैधानिक सुरक्षा और संकल्पों को प्रदान करने के बाद विभिन्न सरकारों और संस्थाओं के माध्यम से यह कहा जा रहा है कि भारत एक बहुभाषी देश है। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। अल्पसंख्यक, लघु और आदिवासी भाषाओं की समृद्धि और विकास का प्रयास किया जाना चाहिए। आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक दृष्टियों से इन अल्प, अल्पसंख्यकों और आदिवासियों की समस्याएँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनसे संवाद संप्रेषण तथा वैचारिक आदान-प्रदान के लिए इनकी भाषाओं का अध्ययन और इनकी मातृबोलियों और मातृभाषाओं के संदर्भ में माध्यम भाषा बनाने में आने वाली समस्याओं पर विशेष कार्य किए जाने की बहुत आवश्यकता है। इसी संदर्भ में इस दिशा में आज ज़्यादा से ज़्यादा कार्य किए जाने की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। 26 जुलाई 2013 को *राँची एक्सप्रेस* में एक खबर छपी थी कि झारखण्ड की छः आदिवासी भाषाएँ विलुप्ति के कगार पर हैं। इसी से मालूम हुआ कि झारखण्ड सरकार ने नौ आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं को द्वितीय राजभाषा का दर्जा दिया है।

राज्य और केंद्र के ऐसे भाषागत निर्णयों का स्वागत है। मगर केंद्र और राज्यों के साथ मिलकर पूरे देश की भाषाओं की स्थिति, गति और नियति पर ठोस निर्णय के लिए व्यापक और ठोस भाषानीति बनाकर उस पर कार्य किए जाने की आज अहम आवश्यकता है। खासकर लघु, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं के विकास के लिए विशेष नीति और उसके क्रियान्वयन आदि के लिए अगर कोई स्वतंत्र भाषा अकादमी की स्थापना करके सुचारू और व्यवस्थित रूप से कार्य किया जाय तो इससे ज़्यादा से ज़्यादा लाभ हो सकता है। इससे हाशिए पर खड़ी भाषाओं और उसके प्रयोक्ताओं को न केवल सम्मान मिलेगा बल्कि उसकी सही पहचान से भारतीय संस्कृति को फायदा भी होगा। यूनेस्को की महानिदेशक इरीना बोकोबा के शब्दों में कहें तो *''मातृभाषाएँ जिनमें कोई भी अपना पहला शब्द बोलता है,*

वही उनके इतिहास एवं संस्कृति की मूल बुनियाद होती है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि स्कूल के शुरूआती दिनों में वही बच्चे बेहतर ढंग से सीख पाते हैं, जिन्हें उनकी मातृभाषाओं में पढ़ाया जाता है। भाषाओं का सम्मान करना ही समाज और उनके सदस्यों के साथ बिना भेदभाव किए शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को सुनिश्चित करने की प्रमुख कुंजी है।'' (राँची एक्सप्रेस, 26 जुलाई 2013)

बच्चों की आवाज़ों में अभिकर्तृत्व की खोज – घर से दूर एक घर में

दीप्ति श्रीवास्तव*
शोभा**

प्रस्तुत प्रपत्र बचपन की संकल्पना और शोध में इसके निहितार्थों पर विचार करता है–सैद्धांतिक दृष्टि से बचपन के सामाजिक संरचनात्मक उपागम के आधार पर एक गैर-सरकारी होम में अवस्थित बच्चों के विशेष सांस्कृतिक समूह को निरीक्षित किया गया है। अध्ययन के अंतर्गत बच्चों की आवाज़ों को संदर्भ बिंदु के रूप में प्रयुक्त करके उनकी स्थिति एवं स्तर में सहायक रणनीतियों पर परिचर्चा की गयी है।***

''मेरा भाई कहता है कि तू अनाथ है। मुझे हँसी आती है।'' यह शब्द ग्यारह वर्षीय रुखसार के हैं। रुखसार 'होम' में रहने वाली उन 75 लड़कियों में से एक है जो एक गैरसरकारी संस्थान द्वारा दिल्ली में शहरी गरीब बच्चों की सुरक्षा और शिक्षा के लिए चलाया जाता है। रुखसार और उसकी साथी अन्य लड़कियों ने अपने माता-पिता और भाई-बहनों से अलग होकर होम में रहने का निर्णय लिया है। यद्यपि यह निर्णय पूर्णतः उनका नहीं है। यह समझना दिलचस्प हो सकता है कि इस होम में एक साथ रहते हुए वह किस प्रकार स्वयं के लिए निर्णय लेती हैं और कैसे अपने सामाजिक संसार को गढ़ती हैं।

इस अध्ययन द्वारा बच्चों की आवाज़ को शोध का शुरूआती बिंदु बनाकर हमने बच्चों के सामाजिक संसार में अंतर्निहित गतिशीलता को समझने का प्रयास किया है। हम एक अनूठी व्यवस्था के अंतर्गत तीन बच्चों के साथ एक महीने की अवधि के दौरान संज़ीदगी से शामिल हुए, जहाँ हमने परिप्रेक्ष्य प्रदर्शन अनुक्रम (Rapley 2007) के आधार पर बच्चों से संवाद स्थापित करके उनके शब्द संग्रह एवं प्रसंगों को

**यूनिवर्सिटी टीचर असिस्टेंट,* शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
***शोध छात्रा* (एम.फ़िल.), शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

***यह प्रपत्र लेखकों के स्वयं के अनुभवों पर आधारित है और इन अनुभवों के प्रस्तुतीकरण में भाषा का प्रवाह महसूस होता है, यद्यपि कहीं-कहीं अनौपचारिकता झलकती है, परंतु भाषा के प्रवाह को ध्यान में रखते हुए इस लेख में भाषा संपादन कर इस प्रवाह को रोकने का प्रयास नहीं किया गया है।

समझने की चेष्टा की। परिप्रेक्ष्य प्रदर्शन अनुक्रम से अभिप्राय यह है कि हमने बच्चों को बोलने दिया तथा यथोचित अवसर मिलने पर उनसे वह प्रश्न पूछे जो हमारे मूल मुद्दों के संदर्भ में प्रासंगिक थे। यह समझने के लिए कि कैसे और क्यों हम बच्चों के साथ संवाद में शामिल हुए तथा कैसे यह बच्चों की आवाज़ में अभिकर्तृत्व से संबंधित है। हम पहले हमारा मुख्य विषय–बच्चे तथा इससे संबंधित हमारे नज़रिए को दर्शाएँगे, तदोपरांत हम बच्चों की आवाज़ में अभिकर्तृत्व की पद्धति एवं विश्लेषणात्मक पहलू को स्पष्ट करेंगे।

बच्चे

विचारकों ने स्वतंत्र रूप से बच्चों की संकल्पना को कभी असभ्य, पूर्णधारणा रहित और यहाँ तक कि अबोध एवं शुद्ध मनुष्य के रूप में भी प्रस्तुत किया है। जब बच्चों की परिभाषा की तुलना, वयस्क की परिभाषा से की जाती है तो वह विरोधाभासी प्रतीत होती है क्योंकि एक तरफ बच्चों को निष्कपट एवं अबोध माना जाता है जिन्हें निरंतर निरीक्षण की आवश्यकता होती है वहीं इन्हें तेज़ भी माना जाता है जो विकल्पों की तलाश में रहते हैं। इस विरोधाभास के उत्पन्न होने का मुख्य कारण यह है कि हम बच्चों को वयस्कों के नज़रिए से देखते हैं। (Alanen 2010; Fine and Sanstrom 1988; Jenks 2005; Waksler 1985) हम बच्चों की इन विरोधाभासी परिभाषा को Rousseu's Emile के इस कथन में भी देख सकते हैं जहाँ वह कहते हैं, *''बच्चों को बच्चे रहने देना चाहिए, यदि हम इस क्रम को जानबूझकर दूषित करते हैं, तब हमें ऐसा अपरिपक्व फल मिलेगा जो न ही पका हुआ होगा न अच्छे स्वाद का होगा और वह जल्द ही सड़ भी जाएगा''* (Rousseau cited in Jenks. 2005, p.3)।

वयस्क होने से पूर्व बच्चों को बच्चों के रूप में देखा जाता है। इसका एक कारण यह भी कि विचारकों ने बच्चों की संकल्पना को इस मानक चिंता के अंतर्गत प्रस्तुत किया है कि कैसे बच्चे वयस्क बनते हैं। Chris Jenks वयस्कों के इस दृष्टिकोण को वर्चस्वता के रूप में देखते हैं। यह वर्चस्वता शैक्षिक क्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होती है क्योंकि शिक्षा व्यवस्था भी समाजीकरण एवं विकासात्मक मनोवृत्ति के ऐसे सिद्धांतों द्वारा सूचित होती है जो बच्चों को मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विकास की दृष्टि से अपरिपक्व एवं वयस्कों पर आश्रित मानती है। (Parsons cited in Jenks 1982 ; Piaget cited in Waksler 1986)। वयस्कों की यह मानक चिंताएँ न केवल बच्चों की आवाज़ को क्षीण करती हैं बल्कि बच्चों के अभिकर्तृत्व तथा सामाजिक संसार में उनकी सहभागिता को भी नकार देती हैं। एक चिंता का विषय यह भी है कि बच्चों को सहज़ एवं सार्वभौमिक माना जाता है, यद्यपि वह अनूठे व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित होते हैं।

प्रकृतिवादियों के साथ एक अन्य समस्या यह भी है कि वह बच्चों के दृष्टिकोणों को वैधता प्रदान करने के लिए संदर्भ बिंदु के रूप में स्वयं के बाल अनुभव आधारित दृष्टिकोणों को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। बहुत से विचारक यह सलाह देते हैं कि ''वयस्क और बच्चे की सामाजिक संसार के विषय में समझ बनाने की प्रक्रियाएँ एक समान होती हैं।'' वे विश्वास

करते हैं कि ''दोनों के विचार द्वंद्व को ही परिलक्षित नहीं करते हैं बल्कि वे उन कौशलों, अभिवृत्तियों, मूल्यों और विश्वासों को गढ़ने में भी सहायक होते हैं जोकि उनकी वर्तमान एवं भविष्य में जीवन संबंधी आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त होते हैं।'' (Sluckin cited in Fine and Sanstrom.1988, p.57) किंतु इसके विपरीत अन्य विचारकों का मानना यह है कि बच्चों के अर्थ एवं मूल्य निर्माण की क्रियाएँ वयस्कों से भिन्न होती हैं। ''वह संसार में प्रतियोगी व्याख्याकार होते हैं'' वह बताते हैं कि ''वह अपनी संस्कृतियों को कब्ज़ाने में और अन्य संस्कृतियों पर उत्तराधिकार स्थापित करने में संलग्न होते हैं।'' (Robert Mckay cited in Fine and Sanstrom 1988, p.57) यह दोनों पक्ष ''मानकीय एवं विश्लेषणात्मक रजिस्टर में उतार-चढ़ाव'' को प्रस्तुत करते हैं। (Alanen 2010, p.5) यद्यपि बच्चों के शोध से संबंधी दोनों विश्लेषणात्मक एवं मानकीय उपागम परस्पर प्रतिद्वंद्वी होते हैं किंतु शोधकर्ता बच्चों की आवाज़ों को संदर्भ बिंदु के रूप में प्रयुक्त करके उनकी स्थिति और स्तर में अभिवृद्धि कर सकते हैं जिससे दोनों उपागमों के मध्य संतुलन स्थापित होगा। (King. 2007)

शोध की प्रक्रिया

बच्चों की आवाज़ों को सुनते समय शोधकर्ताओं को यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि बच्चे दो अलग प्रकार की संस्कृतियों में अपनी पहचान को गढ़ते हैं। एक वह संस्कृति जो उनके स्व से संबंधित होती है दूसरी, जो वयस्कों द्वारा गढ़ी जाती है हालाँकि बच्चे बहुत जल्दी एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में परावर्तन करते हैं क्योंकि ''वह इस प्रकार की परिवर्तनीयता एवं रचनात्मकता में अत्यधिक सक्षम होते हैं।'' (Davies cited in Tammivaara and Enright 1986, p. 234) इसलिए शोधकर्ताओं द्वारा बच्चों के सामाजिक संसार में प्रवेश करने से पूर्व अपनी भूमिका को निर्धारित करना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध में क्योंकि हम बच्चों की संस्कृति में बच्चों की आवाज़ों और अभिकर्तृत्व को समझने का प्रयास कर रहे हैं इसलिए हमने उनके साथ दोस्त की भूमिका का निर्धारण किया है। हमारा प्रमुख उद्देश्य यह समझना है कि –

- बच्चों के साथ अनाक्रमणकारी संवाद की प्रक्रिया को समझना।
- बच्चों की आवाज़ों में अभिकर्तृत्व को तलाशना।

हम बच्चों को समीप से निरीक्षित करना चाहते थे इसलिए हमने एक ऐसी संस्था का चयन किया जिसमें बच्चे न केवल अलग सामाजिक समूह के रूप में रहते थे बल्कि यहाँ बच्चों के साथ अंत:क्रिया करने के पर्याप्त अवसर भी थे। यह दिल्ली में बच्चों का एक होम था। शोध संचालन के लिए इस व्यवस्था में पहुँच स्थापित करना अपेक्षतया सरल था क्योंकि हम इस गैर-सरकारी संगठन 'ज़िंदगी' के संयोजक, जुनैद को पहले से जानते थे। उन्होंने हमें उत्तरी दिल्ली के होम की संयोजक सीमा के पास भेजा। सीमा के फ़ोन पर बात करने पर उन्होंने हमें बताया कि बच्चों से मिलने से पूर्व हमें संस्था के किसी कर्मी से मिलकर संस्थान एवं उसकी कार्य प्रणाली को समझना चाहिए ताकि हम इस संस्था की संस्कृति से परिचित हो सकें। इससे हमें वहाँ

की गतिविधियों एवं कार्य-प्रणाली की आधारभूत तार्किकता का आभास होगा। हमने उनसे, बच्चों से बातचीत करने की इच्छा जताई तो उन्होंने सहमति जताते हुए कहा कि आप अवश्य ही उनसे बात कर सकते हैं क्योंकि यहाँ वह बंधक नहीं अपितु स्वतंत्र हैं। अगले दिन हमने मेट्रो स्टेशन पर पहुँचकर वहाँ के लोगों से होम का पता पूछा, जो कि बहुत अंदर बाज़ार के मध्य अवस्थित था। (स्वयं लेखकों द्वारा अभिव्यक्त)

घर से दूर एक घर में

अब हम एक पुराने बंगले के सामने थे जिसके सामने बहुत बड़ा खुला मैदान था। प्रवेश द्वार पर बहुत बड़ा लोहे का गेट था जिस पर चैन बँधी हुई थी। चैन खोलने के बाद हम अंदर होम प्रबंधक से मिलने चले गए। हमें होम के बारे में पूरा विवरण दिया गया। दिल्ली में इस होम की स्थापना गैर-सरकारी संगठन 'ज़िंदगी' द्वारा 2008 में की गई थी। समानता में अपने विश्वास के साथ 'ज़िंदगी' शहरी दिल्ली के कमज़ोर वर्ग के बच्चों के लिए कार्य करता है। इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन को दो चरणों में नियोजित किया गया है–

चरण-1 बच्चों से संबंध बनाना, और

चरण-2 सुरक्षा, संरक्षण के लिए उन्हें होम उपलब्ध कराना और शिक्षा द्वारा उनकी बेहतरी के लिए कार्य करना।

उपरोक्त कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए दिल्ली सरकार से संपर्क करके सहायता की माँग की गई। इसके बाद एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए जिसमें निम्नलिखित मुद्दों को रेखांकित किया गया –

1. बच्चों की सेवा में होम सरकार द्वारा उपलब्ध करवाया जाएगा।
2. सरकार प्रति वर्ष प्रति बच्चा 6800/- उपलब्ध कराएगी, जिसे बढ़ाकर बाद में 10,000 प्रतिवर्ष प्रति बच्चा कर दिया गया।
3. सरकार बच्चों की औपचारिक एवं निजी विद्यालयों में प्रवेश संबंधी समस्याओं को सुलझाने में मदद करेगी।

यह होम सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा उपलब्ध कराई गई एक ऐसी ही इमारत है। इस घर में 75 लड़कियाँ, 2 समन्वयक, 3 हाउसमदर, 2 शिक्षक, 1 सुरक्षा गार्ड और 1 सफाई कर्मचारी हैं। होम में रहने वाली लगभग 95% लड़कियों के अभिभावक छुट्टियों और त्योहारों के समय उन्हें

[1]CWC is the sole authority to deal with matters concerning children in need of care and protection. A Committee has to be constituted for each district or group of districts, and consists of a Chairperson and 4 other persons one of whom at least should be a womn.
The Committee has the final authority to dispose of cases for the care, protection, treatment, development and rehabilitation of the children as well as to provide for their basic needs and human rights. A child rescued from hazardous occupation, brothel, abusive family or other such exploitative situation must be produced before the CWC who will conduct an inquiry to ensure optimum rehabilitation with minimal damage to the child. (Source : http://dpjju.com)

अपने घर लेकर जाते हैं। यही कारण है कि हम होम की इस व्यवस्था को ''घर से दूर एक घर'' की संज्ञा दे रहे हैं।

यह बच्चे भीख माँगने और कूड़ा बीनने का काम करते थे जिन्हें उनके अभिभावकों की सहमति से उनकी सुरक्षा एवं शिक्षा के उद्देश्य से होम में लाया गया है। इनमें से कुछ बच्चों को बाल कल्याण समिति (CWC)[1] द्वारा घरेलू कर्मियों के रूप में भी मुक्त कराया गया है।

होम के लगभग 35 बच्चे औपचारिक विद्यालय व्यवस्था में प्रवेश कर चुके हैं। जो बच्चे औपचारिक विद्यालय व्यवस्था में नहीं हैं उनके लिए सरकार के सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत आवासीय ब्रिज कोर्स की व्यवस्था की गई है। (SSA Policy Document 2004)

बच्चों की पहचान

होम के विषय में जानकारी एकत्रित करने के पश्चात् हमने होम के बच्चों को जानने-पहचानने की प्रक्रिया प्रारंभ की। बच्चों के संदर्भ में गहन वैचारिक एवं व्यवहारगत समझ बनाने के उद्देश्य से मात्र तीन बच्चों को (दो ग्यारह और एक बारह साल) ही चयनित किया गया।

यह एक अवयस्क समूह था। हमने इस आयु वर्ग को इसलिए चुना क्योंकि इस आयु वर्ग के बच्चे समाज में खुद को समायोजित करने के विभिन्न तरीकों की खोज में संलग्न रहते हैं। एक ओर, जहाँ वह स्वयं के विषय में समझ विकसित कर रहे होते हैं, वहीं दूसरी ओर वह यह भी जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि सामाजिक साँचे में अन्य लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं। यद्यपि होम में इन बच्चों पर अभिभावकीय निरीक्षण तो नहीं होता किंतु वह निरंतर होम के अन्य वयस्क सदस्यों के पर्यवेक्षण में रहते हैं। (Weigert, Teitge and Teitge 1986)

अध्ययन के दौरान हमने रुखसार (11 साल), रिहाना (11 साल) और पूजा (12 साल) से बातचीत की। इस संदर्भ में हुई बातचीत को विवरणित करने से पूर्व हम मीना और प्रतिभागियों से हुई वार्ता के आधार पर उनका चित्रण प्रस्तुत करना चाहेंगे।

तीन बच्चे

रुखसार ग्यारह साल की है। रुखसार के बारे में क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को रिहाना की माँ के द्वारा पता लगा था। उसकी पाँच बहनें और चार भाई हैं। उसकी माँ बीमार रहती है और भाई ड्रग्स का आदि है। उसका भाई माँ के साथ दुर्व्यवहार करता है। वह कूड़ा बीनने के कार्य से अपनी माँ की आर्थिक मदद करती है।

रिहाना ग्यारह वर्ष की है। वह स्वयं को रिहाना के स्थान पर रीना के नाम से संबोधित करवाना अधिक पसंद करती है। वह लगभग दो साल से होम में रह रही है। होम में आने से पूर्व वह बवाना में अपनी माँ के साथ रहती थी और कूड़ा बीनने का कार्य करके उनकी आर्थिक मदद करती थी। 'ज़िंदगी' के क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं के द्वारा उसे होम में लाया गया था। उसकी माँ कुछ समय तक इसी होम में हाउसमदर के रूप में कार्यरत् थी किंतु किसी कारणवश उनका स्थानांतरण कर दिया गया। अब उसकी माँ वापस बवाना चली गई है। यद्यपि रिहाना को कुछ समय तक औपचारिक विद्यालय व्यवस्था में भेजा गया

था लेकिन समायोजन से संबंधित समस्याओं की वजह से उसे स्कूल छोड़ना पड़ा। रिहाना के सौतेले पिता उसके भाई की हत्या के जुर्म में जेल काट रहे हैं। उसकी माँ का फ़ोन बंद होने के कारण वह लगभग एक महीने से अपने परिवार के संपर्क में नहीं है।

पूजा शायद बिहार से है। उसे एक गैर-सरकारी संस्था ने नोएडा से एक घरेलू श्रमिक के रूप में मुक्त करवाया था। उसे होम में बाल कल्याण समिति के द्वारा भेजा गया है। बाल कल्याण समिति ने उसके द्वारा बताए गए पते के आधार पर उसका घर ढूँढ़ने के प्रयास किए हैं किंतु अपने घर के पते के बारे में उसे एक धुँधला-सा आभास ही है। जिस कारण बाल कल्याण समिति उसका घर नहीं ढूँढ़ पा रही है।

उपरोक्त तीनों बच्चों को सोद्देशियक न्यादर्श प्रणाली के आधार पर चयनित किया गया है। जब हम पहले दिन होम गए तो रुखसार हाउस मैनेजर सीमा के आसपास घूम रही थी। उसी दिन वह डॉक्टर के रूप में स्वयं का चित्र बनाकर हमारे पास लाई। दूसरे दिन, जब हम उनसे मिलने गए तब भी उसने हमसे काफ़ी बातचीत की और जल्द ही वह हमारी Key informant बन गई। अध्ययन की दृष्टि से Key informant होना आवश्यक भी था ताकि ''प्रतिभागियों से स्वीकार्यता एवं उनके मध्य पैठ की प्रतिस्थापना की जा सके।'' (Fine and Sanstrom 1988, p.50)

उसी के कारण हम पूजा के सम्पर्क में आए। रिहाना से हमारी मुलाकात उस दिन हुई जब हम मीना से 'ज़िंदगी' के बारे में जानकारी एकत्रित कर रहे थे। उसने हमारे नाम पूछे और दूसरे दिन हम मैदान में बैठे रुखसार से बात कर रहे थे तो वह वहाँ आकर बैठ गई। हम फील्ड में न तो पूर्व नियोजित प्रश्नों के साथ जाते थे और न ही कोई कैमरा या टेपरिकॉर्डर ही साथ ले जाते थे क्योंकि हम प्रतिभागियों की प्राकृतिक बातचीत में विघ्न उत्पन्न नहीं करना चाहते थे। हालाँकि हम इस संभावना से इंकार नहीं करते कि हमारी उपस्थिति उन्हें यह सोचने के लिए बाधित करती होगी कि हम वहाँ क्यों आते हैं? यद्यपि हमने मीना को अध्ययन की प्रकृति के विषय में पूरी जानकारी दे दी थी लेकिन बच्चों से पहुँच स्थापित करने तक हमने उनको अध्ययन की प्रकृति के विषय में पूर्ण रूप से व्याख्यायित नहीं किया था।

सहमति प्राप्ति

होम की व्यवस्था में हम पूर्णत: अजनबी नहीं थे क्योंकि होम की प्रकृति ही ऐसी थी कि नियमित रूप से स्वयंसेवक बच्चों के साथ बातचीत करने और समय बिताने के लिए आते रहते थे। हमने होम के बच्चों को बताया कि हम शिक्षा संकाय से हैं। शोधकर्ता के रूप में अपनी रणनीति के अनुसार, हमने बच्चों से प्रत्यक्ष सहमति प्राप्ति का प्रयास न करके बच्चों से बातचीत के द्वारा उनकी संस्कृति को समझने और विश्लेषित करने का प्रयास किया। पहले दिन मैदान में बैठे जब हम रुखसार से बात कर रहे थे, तो उसने कहा ''यहाँ सब लोग काम से आते हैं हमसे मिलने कोई नहीं आता'' उपरोक्त कथन के आधार पर हमने सहमति प्राप्ति से पूर्व बच्चों की विश्वास प्राप्ति का निर्णय लिया। उसके बाद ही शोध के लिए प्रायोजित अन्य गतिविधियों और उनकी आवाज़ को रिकॉर्ड करने संबंधी कार्य किए गए।

सहमति प्राप्ति का कार्य हम पाँचवीं मुलाकात में ही कर पाए। जब हमने उनसे पूछा कि, ''आप जानते हैं कि हम कौन हैं? और यहाँ क्यों आए हैं?'' तो रिहाना ने कहा, ''हमें मालूम है हमसे मिलने आए हो।'' बातचीत के दौरान हमने उन्हें बताया कि हम यहाँ यह समझने आए हैं कि आप सब होम में एक साथ कैसे रहते हो। यद्यपि सहमति प्राप्ति से पूर्व भी हम उनकी बातचीत को सुनकर और अत:क्रिया के दौरान यथोचित स्थान पर प्रश्न पूछकर बच्चों के साथ संवाद में संलग्न थे। जब बच्चे अपनी कक्षाओं से फ्री होते थे तो हम उनके साथ बैठते थे, खेलते थे और उनसे बातचीत करते थे। बच्चों से अंत:क्रिया की यह प्रक्रिया उस समय भी जारी थी जब बच्चे अपने वार्षिक समारोह (17 अप्रैल 2010) में होने वाले प्रदर्शनों के अभ्यास कार्य में व्यस्त थे।

बच्चों के साथ संवाद

शोधकर्ताओं के रूप में कार्य क्षेत्र में हममें कुछ निश्चित मूल्यों एवं सांस्कृतिक बोझ का अंतर्निहित होना सामान्य तो था किंतु दूसरी ओर इस बात को ध्यान रखना भी अनिवार्य था कि शोध के दौरान हम इन मूल्यों को दूसरों पर न थोप दें। ताकि बच्चों के साथ अंत:क्रिया की प्रक्रिया सांस्कृतिक आक्रमण न प्रतीत हो (Freire 1997)। इसलिए हमने सर्वप्रथम कार्य क्षेत्र में मिश्रित होने की योजना बनाई और साथ ही बच्चों को अंत:क्रिया में कोई भी दिशा लेने के लिए स्वतंत्र रखा। इस कार्य के लिए अधिक समय की आवश्यकता थी ताकि आंकड़ों का संकलन प्राकृतिक व्यवस्था में किया जा सके (Taylor and Bogdan 1984)। हमें इस बात का अहसास बच्चों से तीसरी मुलाकात के बाद हुआ जब हमने उन्हें 'यातायात के साधनों' से संबंधित एक चित्र दिखाने का प्रयास किया जो वह अपनी पर्यावरण अध्ययन की कक्षा में पढ़ चुके थे। इस चित्र में बैलगाड़ी, मोटरसाइकिल, कार और हवाई जहाज़ के प्रतिरूप बने हुए थे। यद्यपि हमारा मंतव्य चित्रों के प्रति प्रतिभागियों की प्रतिक्रियाओं को समझना था। लेकिन चित्र से संबंधी हमारी मान्यता यह थी कि बच्चे चित्र में सामाजिक वर्ग विभिन्नताओं को देखेंगे किंतु उन्होंने इसे एक पाठ योजना की तरह समझा और पाठ के अभ्यास कार्य के रूप में अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करने लगे।

इस कार्य में समय व्यर्थ करने के स्थान पर हम रिहाना और रुखसार के पास बैठ गए जो ऊपर अन्य लड़कियों के समूह के साथ नृत्य का अभ्यास कर रही थीं। हमें देखकर रुखसार शर्माकर बैठ गई जबकि अन्य लड़कियों ने अभ्यास जारी रखा। रुखसार को प्रोत्साहित करने के लिए हममें से एक शोधकर्त्री उसके पास जाकर उसके नृत्य की प्रशंसा करने लगी और साथ ही लिली (नृत्य शिक्षिका) के बारे में बातचीत करने लगी। इसी दौरान दूसरी शोधकर्त्री ने पूजा को गिट्टे खेलने के लिए आमंत्रित किया। बाद में रुखसार भी हमारे साथ वही खेल खेलने लगी। हमने दो-दो की टीमें बनाईं। खेल के दौरान हमें पता चला कि रुखसार ने पूजा से अपनी दोस्ती वापस पाने के लिए उसके साथ नवरात्र के व्रत रखे हैं। एक मुस्लिम लड़की का एक हिंदू लड़की के लिए व्रत रखना अपने आप में एक अनूठी बात थी।

शोधकर्त्री — तुम रात को यहाँ सोते हो तो दोनों दोस्त एक साथ सोती होगी।

रुखसार — पहले पूजा मेरे साथ सोती थी। अब सोनी के साथ सोती है।

पूजा — नहीं तो। पहले सोती थी। अब तो अकेले सोती हूँ।

शोधकर्त्री — तुम दोनों बहनें हो?

पूजा — जो यहाँ आता है वो यही कहता है।

बाद में जब हम लंच के लिए जा रहे थे तो रुखसार ने वहीं रुककर पूजा का इंतज़ार किया।

दूसरी घटना में जब हम मैदान में बैठे यह चर्चा कर रहे थे कि अब हमें कब आना चाहिए तो रुखसार ने हमें बताया कि आपको सोमवार और मंगलवार को आना चाहिए क्योंकि उस दिन P.T.M. है तो हमने उससे पूछा–

शोधकर्त्री — PTM में क्या होता है?

रुखसार — मम्मी–पापा को बुलाते हैं।

शोधकर्त्री — क्या बात करते हैं?

रुखसार — नहीं मालूम। बच्चों को अंदर आने नहीं देते। छोटे बच्चे ही अंदर आते हैं।

शोधकर्त्री — क्या तुम्हारी मम्मी कभी बताती है। PTM में क्या होता है?

रुखसार — (गुस्से में) PTM में मम्मी नहीं आती। एक बार आई थी तो मैंने मरियम की शिकायत लगाई थी। मम्मी ने कुछ नहीं किया। उसके बाद तो मैंने कुछ भी बताना छोड़ दिया।

यद्यपि हम सावधानीपूर्वक परिप्रेक्ष्य प्रदर्शन अनुक्रम (Repley 2007) के आधार पर प्रश्न पूछ रहे थे किंतु बातचीत के दौरान ही हमने जाना कि बच्चे हमसे वैधता प्राप्त करना चाहते हैं अर्थात् उनकी शर्तों पर ही हम उनसे घनिष्ठ मित्रता स्थापित कर सकते थे। साथ ही हमें इस बात का भी अनुमान था कि इस मित्रता में उन्हें स्वायत्तता मिले ताकि वह स्वयं इस बात का निर्धारण कर सकें कि हम उनके कितने करीब जा सकते हैं। इसलिए कभी–कभी वह अपनी निजता के संरक्षण के लिए कोड भाषा का भी प्रयोग करते थे। शोधकर्ता Goody मानते हैं कि बच्चों के साथ संवाद स्थापित करने में इस प्रकार की कठिनाइयाँ अंत:र्निहित होती हैं। बच्चों के संसार को बच्चों के दृष्टिकोणों से समझना एक कठिन चुनौती है। (Goody cited in Tammivaara and Enright 1986)

लंबे समय तक समूह का निरीक्षण करने के पश्चात् हमने एक अन्य चुनौती का सामना किया। हमने उनकी बातचीत के पैटर्न को समझने की कोशिश की। हमने उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली को कूटबद्ध करने और उनकी प्रतिक्रियाओं को रिकॉर्ड करने का प्रयास किया। हमने कूटबद्धता के दौरान उनकी इस छवि को ध्यान में रखा कि –

- यह एक ऐसी परिस्थिति प्रस्तुत करेंगे जो उनसे परिचित हो, ताकि वह परिस्थिति को पहचान सकें।
- यह सरल (न स्पष्ट और न ही रहस्यपूर्ण) और विभिन्न डिकोडिंग संभावनाओं को परिलक्षित करेंगी (Freire 2005)
- हमने रुखसार, रिहाना और पूजा को एक चित्र दिखाया और उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने को कहा ताकि हम उनकी प्रतिक्रिया रिकॉर्ड कर सकें। यद्यपि वह उस कार्य के लिए सहमत हो गईं थीं और सब कुछ पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार किया जा

रहा था कि अचानक रुखसार ने न केवल अपनी आवाज़ रिकॉर्ड करने से मना कर दिया बल्कि वह रिकॉर्डर लेकर लिली के पास चली गई ताकि वह उसमें लिली का गाना रिकॉर्ड कर सके। शायद टेप-रिकॉर्डर उन्हें अपने निजी संसार में एक आक्रमण या हस्तक्षेप प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने रिकॉर्डिंग का बहिष्कार कर दिया। हमें उस कार्य को वहीं समाप्त करना पड़ा और हम अगले दिन के लिए अन्य गतिविधि की योजना बनाने में जुट गए।

- शोध में बच्चों से बातचीत के आधार पर रेखांकित फील्ड नोट्स और उनकी ड्राइंग्स के आधार पर उनके जीवन से संबंधित थीम्स को उभारा गया है जिसका विश्लेषण अग्र भाग में किया गया है।
- बच्चों की आवाज़ में अभिकर्तृत्व की खोज़

बच्चों की आवाज़ में अभिकर्तृत्व की खोज का संबंध उनकी सामाजिक दुनिया में सक्रिय संरचनाकारों की भूमिका के संदर्भ में हमारी चिंताओं से संबंधित है। अभिकृर्तत्व से अभिप्राय बच्चों की स्वयं एवं अपने आसपास के लोगों के संदर्भ में स्वतंत्र समझ विकसित करने से है। इसलिए अभिकर्तृत्व का आशय सामाजिक संरचनाओं में पूर्ण स्वायत्तता को क्रियान्वित करना नहीं है बल्कि वह तो ढाँचागत व्यवस्था में स्वतंत्र इच्छा और सत्ता है (Appiah. 2005)। James, Jenks and Prout के अनुसार ''बच्चों और अभिकृत्व को दो नज़रियों से देखा जाता है जिसमें पहला दृष्टिकोण 'आदिवासी बच्चे' का है। इसमें बच्चे अपने सामाजिक समूहों में क्रियाशील और रचनात्मक होते हैं। दूसरा दृष्टिकोण 'अल्पसंख्यक बच्चों का समूह' यह मानता है कि बच्चों का व्यवहार और उनकी वैचारिक क्रियाओं को व्यापक सामाजिक संरचनाओं में देखा जाना चाहिए। इसमें बच्चों के कार्य सामाजिक सीमांती समूहों द्वारा बाधित होते हैं।'' (James, Jenks and Front cited in Wyness. 2000, p. 88)

पहला दृष्टिकोण सापेक्षतावादी है जो कि बच्चों को निष्क्रिय और समाजीकरण के आदियों के रूप में नहीं बल्कि सामाजिक संरचना में सक्रिय विषयों के रूप में परिलक्षित करता है। दूसरा दृष्टिकोण संरचनात्मक है जो बचपन को जेंडर, वंश, जाति आदि की राजनीतिक रणनीति के रूप में दृष्टिगोचर करता है। इसके अनुसार बच्चे की पूर्ण सामाजिक पहचान के लिए उसे संस्कृति, राजनीति और संपूर्ण सामाजिक संरचनात्मक ढाँचे में अवस्थित करना आवश्यक है।

उपरोक्त दोनों दृष्टिकोणों में से हम पहले दृष्टिकोण से बच्चों की आवाज़ों में अभिकर्तृत्व को समझने का प्रयास कर रहे हैं। हम बच्चों के व्यक्तिगत सामाजिक ढाँचों एवं समूहों में उनके निर्माणात्मक अभिकर्तृत्व के स्वरूप को समझने का प्रयास कर रहे हैं। यहाँ अभिकर्तृत्व से अभिप्राय यह है कि बच्चे दूसरों के कार्यों के संदर्भ में अपने स्वयं के कार्यों को कैसे समझते हैं, संरचित करते हैं एवं उनमें बदलाव करते हैं। यही एक कारण है कि हमने होम में रहने वाले बच्चों को ही शोध के लिए चयनित किया क्योंकि यह न केवल एक अलग सामाजिक समूह था बल्कि शोध के लिए सुलभ भी था।

साथ ही इस समूह में बच्चों को अपने आयु वर्ग के बच्चों के साथ मिश्रित होने के लिए गुंजाइश भी उपलब्ध थी। यह हमें निरीक्षण के

दौरान रणनीतियों की उस पूरी शृंखला को समझने में भी सहायक थी जिनके माध्यम से वह अपनी सामाजिक संसार को अर्थ देने में कार्यरत् थी। अवलोकन के दौरान हमने स्वयं के लिए निर्णय निर्माण में उनकी भूमिकाओं एवं अन्यों के प्रति प्रतिक्रियाओं को समझने की कोशिश की क्योंकि यह चिंतनशील प्रक्रिया ही उनके अभिकर्तृत्व को संरचित कर रही थी। बच्चों के साथ लगभग एक महीने की अवधि में संचालित संवाद के आधार पर हमने कुछ थीम्स को रेखांकित किया है जिनका संदर्भ बच्चों के द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियाँ हैं। इन थीम्स का विश्लेषण नीचे किया गया है।

अपनत्त्व

शोधकर्त्री — यहाँ तुम्हारी दोस्त कौन है?

रुखसार — दोस्त थी। अब मेरी दोस्त किसी ओर की दोस्त बन गई है।

रुखसार पूजा को पसंद करती है। पूजा की दोस्ती वापस पाने के लिए ही वो उसके साथ नवरात्रों के व्रत भी रख रही है।

दूसरी घटना में रुखसार पूजा के लिए फल लाई और कहने लगी –

रुखसार — ये खा ले सुबह से तूने कुछ खाया ही नहीं।

शोधकर्त्री — तुमने भी व्रत रखा है।

रुखसार — हाँ

शोधकर्त्री — क्यों?

रुखसार — क्योंकि मुझे अच्छा लगता है। हम एक साथ मंदिर जाते हैं।

एक मुस्लिम लड़की का एक हिंदू लड़की के लिए व्रत रखना अपने आप में एक अनूठी बात है। स्कूलों में भी इस प्रकार के धार्मिक समाजीकरण को स्थान दिया जाना चाहिए जबकि यह दृष्टिगोचर होता है कि औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था में धर्म के संदर्भ में बात ही नहीं की जाती।

वो दोनों साथ मंदिर जाती हैं और सोती भी साथ ही हैं लेकिन कुछ समय से पूजा ने अलग सोना शुरू कर दिया है।

रुखसार पूजा को अपने समूह में शामिल करना चाहती है इसलिए उसे जब भी मौका मिलता है तो वह उसे समूह में शामिल करने का प्रयास करती है। एक बार जब हम लोग लंच के लिए नीचे जा रहे थे तो रुखसार ने वहीं सीढ़ियों पर रुककर उसका इंतज़ार किया। वे दोनों एक-दूसरे के साथ न केवल आत्मीय संबंध साझा करती हैं बल्कि अन्य लोगों से अपने निजत्व के संरक्षण के लिए कोड भाषा का भी प्रयोग करती हैं।

अपनत्व की यह भावनाएँ मात्र रुखसार की ओर से ही नहीं हैं बल्कि पूजा भी उसके लिए भावनात्मकता महसूस करती है। एक बार दोनों के झगड़े में हमने समझाने का प्रयास किया तो रुखसार को गुस्से में देखकर पूजा ने हमें दखल देने से मना कर दिया। यद्यपि वह दोनों एक-दूसरे को पसंद करते हैं लेकिन खुद के लिए ज़िम्मेदारी लेने का भय पूजा को दूसरों से घनिष्ठ संबंध बनाने से रोकता है। उसके इस कथन ''मुझे अपने आप से डर क्यों लगता है'' में भी यही भाव झलकते हैं।

बाद में, एक दिन जब हमने उन्हें 'मेरी दोस्त' का चित्र बनाने को कहा तो रिहाना ने होम में रहने वाली अपनी एक सहेली की तसवीर बनाई। लेकिन रुखसार ने अपनी दोस्त का चित्र मनाने से

मना कर दिया। यद्यपि हमने उससे ज़िद नहीं की लेकिन कुछ समय बाद वो हम दोनों की तसवीर बना कर लाई। बाद में जब हम नीचे जा रहे थे तो उसने हमें बताया कि वह पूजा को पसंद नहीं करती। हमने उसे बताया शायद पूजा तुम्हें पसंद करती है। हमारे यह पूछने पर कि पूजा को होम में सामंजस्य संबंधी कोई समस्या है तो उसने पूजा के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए बताया कि शायद पूजा अपने किसी पूर्व अनुभव से ग्लानि महसूस करती है और इसलिए उसके मन में एक वित्रित प्रकार का भय बस गया है जिसके कारण वो दोस्त भी नहीं बना पाती है। इतनी गहन संवेदनशीलता बच्चों में अंतर्निहित होती है जिसे औपचारिक कक्षाओं के दौरान भी टटोलने की आवश्यकता है।

शोषित होने का भय

रिहाना और रुखसार अपनी असहायता के कारण अपने शोषित होने के भय को प्रदर्शित करती हैं। जब वे कहती हैं,

रिहाना — (सोनिका, स्वास्थ्यकर्मी से) तुम्हारा मोबाइल तोड़ देना चाहिए। जब देखो बात करती रहती हो। हमारे साथ बातें करने का टाइम नहीं है।

रुखसार — यहाँ सब लोग काम से आते हैं। हमसे मिलने कोई नहीं आता।

शोषित होने के भय की मूल जड़ उनकी गरीबी एवं असहायता संबंधी अनुभवों में निहित है। दिल्ली की सड़कों पर आज भी लगभग 50,000 बच्चे (Save the Children) अपने आप में इस असहायता को महसूस करते हैं। जहाँ वे किसी भी प्रकार के आत्म-संरक्षण के साधनों से रहित हैं।

इस प्रकार के अनुभवों के कारण ही होम की व्यवस्था में आने पर वह बच्चे अपने आप का अति संरक्षण करने का प्रयास करते हैं।

अकेलेपन का डर

वे भीड़ में भी अकेलेपन के भय को अभिव्यक्त करती हैं।

शोधकर्त्री — कभी घर जाती हो?

रुखसार — शुरू-शुरू में जब आई थी तो मैंने भागने की कोशिश की थी। फिर मम्मी आई थी। मीना दीदी ने बुलाया था। अब तो छुट्टियों में घर जाती हूँ। शुरू में इतनी लड़कियों को देखकर घबरा गयी थी।

उन्हें यह भी लगता है कि कहीं इतने लोगों के साथ रहने से वह अपनी सत्ता को न खो दें।

रुखसार — घर में मेरी बहुत ज़िद चलती है। यहाँ चुप रहना पड़ता है। जब घर में थी तो मेरा हाथ दरवाज़े में आ गया था। गुस्से में मैंने खाना नहीं खाया था।

वह न केवल मुखर है बल्कि अपने समान के संबंध में स्वयं के अधिकारों को भी व्यक्त करती है।

बच्ची — तुने जो दुपट्टा पहना है वो मम्मी माँग रही है।

रिहाना — क्यूँ दूँ? वो मेरा है।

उन्हें इस बात का भी भी आभास है कि होम में रहते हुए उन्हें न केवल बहुत सारे बच्चों

के साथ बल्कि वयस्कों के साथ भी सामंजस्य स्थापित करना पड़ेगा। यद्यपि इतने बड़े समूह में अपने घरों की तुलना में, उन्हें संतुलन स्थापित करने में कठिनाइयाँ अवश्य महसूस होंगी। किंतु इस प्रकार की कठिनाइयों के द्वारा ही वह सशक्त बनेंगी और इस कार्य में शिक्षा उनकी मदद करेगी। यह अहसास रुखसार को होता है जब वह कहती है–

रुखसार — मेरा भाई कहता है कि तू अनाथ है। मुझे हँसी आती है। मैं पढ़ूँगी। बस स्कूल में एक बार नाम लिखा जाए।

शोधकर्त्री — तुम बहुत समझदार हो।

रुखसार — (अभिपुष्टि में मुस्कुराते हुए) मेरा भाई कहता है कि तू ईमान नहीं छोड़ती। ये मैंने सीखा है।

अपनी पहचान को इतनी सशक्तता से गढ़ने में होम की संरक्षित व्यवस्था और शैक्षिक अभिमुखीकरण उनकी मदद कर रहा है।

निष्कर्ष

उपरोक्त थीम्स के विश्लेषण द्वारा यह परिलक्षित होता है कि सामाजिक संसार में अपने प्रायोजित मंतव्यों एवं कार्यों के द्वारा बच्चे अपनी ठोस उपस्थिति दर्ज़ कराते हैं। बच्चे अभिकर्तृत्व होते हैं क्योंकि वह सामाजिक संसार में अपनी निरंतर संलग्नताओं, प्रायोजनों और विचारों के द्वारा स्वयं को संरक्षित करने का प्रयास करते हैं। वह स्वयं के कार्यों के द्वारा ही अपने और दूसरों के बारे में एक निश्चित समझ का निर्माण करते हैं। इतना ही नहीं वह अपने पूर्वानुभवों एवं वर्तमान के निर्णयों में अंतर्संबद्धता की समझ भी रखते है किंतु यह देखना ज़रूरी है कि मानकीय औपचारिक विद्यालय व्यवस्था में बच्चों की आवाज़ों में अभिकर्तृत्व की यह संरचना कहीं क्षीण न हो जाए।

संदर्भ

अप्पियाह, के. ए. 2005. द *एथिक्स ऑफ़ आइडेंटिटी.* न्यू जर्सी, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रैस

अलनिन, एल. 2010. (ऐडिटोरियल), ''टेकिंग चिल्ड्रन्स् राइट्स् सीरियसली'', *चाइल्डहुड*, 17(5), 5-8

आप्टेकर, एल. 1944. ''स्ट्रीट चिल्ड्रन इन द डेवलपिंग वर्ल्ड–ए रिव्यू ऑफ़ देअर कंडीशन'', *क्रॉस कल्चरल रिसर्च*, 28(3), 195-224

किंग, एम. 2007. ''द सोश्योलॉजी ऑफ़ चाइल्डहुड ऐज़ साइंटिफ़िक कम्युनिकेशन–ऑब्जर्वेशन फ्रॉम ए सोशल सिस्टम्स पर्सपेक्टिव'', *चाइल्डहुड*, 14(2), 193-215

गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, अप्रैल 2004. *सर्व शिक्षा अभियान–ए प्रोग्राम फ़ॉर यू.ई.ई.*, मैनुअल फ़ॉर प्लानिंग एंड अप्रैज़ल, न्यू डेल्ही – एम.एच.आर.डी.

जेन्क्स, सी. 2005. *चाइल्डहुड (2 एडिशन)*. ऑक्सॉन–रूटलेज टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप

जेन्क्स, सी. (एडि). 1982. द *सोश्योलॉजी ऑफ़ चाइल्डहुड.* लंदन–बैट्स्फोर्ड

जेम्स. ए. एंड प्राउट ए. (एडि.). 1997. *कन्सट्रक्टिंग एंड रीकन्सट्रक्टिंग चाइल्डहुड.* लंदन–फ़ाल्मर प्रैस

टेलर, एस. जे. एंड बोग्डन, आर. 1984. *इंट्राडक्शन टू क्वालिटेटिव रिसर्च मैथड्स्–द सर्च फ़ॉर मीनिंग* (2 एडिशन). न्यूयॉर्क – जॉन विली एंड संस

तम्मीवारा, जे. एंड एन्राइट, डी. एस. दिस. 1986. ''ऑन एलिसिटिंग इंफ़ॉर्मेशन–डाइलॉग्स् विद् चाइल्ड इंफ़ॉर्मेंट्स्'', *एन्थ्रोपोलॉजी एंड एजुकेशन क्वार्टरली*, 17(4), 218-318

फाइन, जी. ए. एंड सैंडस्ट्रॉम, के. एल. 1988. *लीविंग चिल्ड्रन:पार्टीसिपेंट आब्ज़र्वेशन विद् माइनर्स.* न्यू डेल्ही, सेज

फ्रेरे पा. 1997. *प्रोढ साक्षरता–मुक्ति की सांस्कृतिक कार्रवाई.* दिल्ली – गंधा शिल्पी प्रकाशन

———2005. *एजुकेशन फ़ॉर क्रिटिकल कांशियसनेस.* लंदन – बैट्स्फोर्ड

भास्करन, आर. एंड मेहता, बी. 2011.*सर्वाइविंग द स्ट्रीट्स्–ए सेंसस ऑफ़ स्ट्रीट चिल्ड्रन इन डेल्ही बाय द इंस्टीट्यूट फ़ॉर ह्यूमन डेवलपमेंट एंड सेव द चिल्ड्रन.* न्यू डेल्ही, सेव द चिल्ड्रन

वॉक्सलर, एफ़.सी. 1986. स्टडिंग चिल्ड्रन – फीनॉमिनोलॉजिकल इनसाइस्, *ह्यूमन स्ट्डीज़*, 9 (1), 71-82

वायनेस, एम.जी. 2000 – *कॉन्टेस्टिंग चाइल्डहुड.* लंदन– फ़ाल्मर प्रैस

पर्यावरण शिक्षा – आवश्यकता एवं प्रारूप

रश्मि श्रीवास्तव*

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण प्रदूषण एक ऐसी समस्या है, जिससे संपूर्ण विश्व ग्रस्त है। स्थितियाँ बद् से बद्तर हो जाएँ, उससे पूर्व ही इस दिशा में आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। शिक्षा को इस दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। आज यह ज़रूरी दिखाई देता है कि आधुनिक जीवन शैली के विस्तार व विकास की गति के साथ तालमेल बिठाने के क्रम में अपनी प्रकृति के साथ ज़्यादा छेड़-छाड़ न की जाए। नवीन वैज्ञानिक खोजों के साथ यह ज़रूर देखा जाए कि उनके प्रयोग से पर्यावरण को नुकसान न हो। उनसे प्राप्त लाभ का वजन उनसे होने वाली हानि से कहीं कम हो। विकास व विस्तार की गति के साथ पर्यावरण के साथ कोई समझौता न स्वीकार करने की मानसिकता पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाई जा सकती है। अतः इस दिशा में हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए।

ईश्वर प्रदत्त इस धरती पर जहाँ हमने जन्म लिया है, उसे प्रायः इस कदर अपना समझते हैं कि इसके साथ कहाँ नाइंसाफी कर बैठें समझ ही नहीं पाते। एक छोटा बच्चा राह चलते अपनी हर चीज़ माँ को थमा देता है। माँ तू इसे पकड़, इसे भी और इसे भी। इस पकड़-पकड़ाई में बच्चा यह नहीं देखता कि माँ तो थक रही है। उस पर उसने इतनी चीज़ें लाद दी हैं कि उसका चलना मुश्किल हो रहा है। अपनी धरती, अपनी प्रकृति के साथ हम मनुष्यों ने भी कुछ ऐसा ही किया है। उसके देने को बढ़े हाथों पर हमने अपनी ज़रूरतों की इतनी सारी माँगों का बोझ लाद दिया है कि स्थितियाँ गड़बड़ा गयी हैं। इस असंतुलन ने पर्यावरण प्रदूषण को जन्म दिया है। यहाँ पर्यावरण शब्द पर ध्यान दें। पर्यावरण शब्द 'परि' और 'आवरण' दो शब्दों से मिलकर बना है। परि का अर्थ है चारों ओर और आवरण का अर्थ है ढका हुआ। अर्थात् पर्यावरण शब्द का आशय हमारे चारों ओर पाए जाने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक वातावरण से है। हमारी शिक्षा व्यवस्था सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रति सदैव संवेदनशील रही है किंतु प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति शिक्षा व्यवस्था में उपेक्षा की स्थिति दिखाई देती है, आज तेज़ी से हुए औद्योगिक विकास ने प्राकृतिक वातावरण को असंतुलित किया है। हालत यह है कि आज पीने के पानी को शुद्ध

**असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* (बी.एड.), महिला विद्यालय डिग्री कालेज, लखनऊ (उ.प्र.)

किए बिना पानी पीना संभव नहीं है। बड़ी-बड़ी मिलों और फ़ैक्ट्रियों में अपशिष्ट जल बगैर साफ़ किए नदी-नालों में यूँ ही बहा दिए जा रहे हैं। पानी में अनेक रसायनों तथा आपत्तिजनक स्रावों से वह दूषित हो रहा है जो कि समुद्री जीवों के लिए भी हानिकारक है। मिलों–फ़ैक्ट्रियों से निकलने वाले धुएँ और गैसों ने एक ओर जहाँ वायु को दूषित किया है वहीं रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है। अर्थात् सभ्यता के विकास और अपनी जीवन शैली को आधुनिक, सुविधासंपन्न बनाने के क्रम में हमने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तो किया ही है, उन्हें दूषित भी किया है। यही हमारी ज़िम्मेदारी आने वाली पीढ़ियों के लिए बढ़ जाती है। यह ज़रूरी दिखाई देता है, कि भावी पीढ़ी को विज्ञान व तकनीकी का ज्ञान देने के साथ-साथ उनके प्रयोग में आवश्यक सावधानी बरतने की दिशा भी दिखाई जाए। यहीं हमारी शिक्षा व्यवस्था पर एक बड़ी ज़िम्मेदारी यह भी बढ़ जाती है कि वह बच्चों तथा बड़ों को पर्यावरण संरक्षरण के प्रति भी सजग बनाये।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में इसे पर्यावरण शिक्षा का नाम दिया गया है। वास्तविकता यह है कि इस दिशा में किए गए प्रयास बहुत प्रभावपूर्ण नहीं हो सके हैं, जिससे पर्यावरण शिक्षा अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी है। अतः आवश्यक प्रतीत होता है कि पर्यावरण शिक्षा को और अधिक व्यवहारिक व रुचिपूर्ण बनाया जाए, इसकी संक्षिप्त विवेचना निम्नवत् है। यहाँ सबसे पहले दृष्टि डालें कि पर्यावरण शिक्षा है क्या? और इसके लिए क्या प्रयास किए जा रहे हैं?

IUCN (1970) के सेमिनार में पर्यावरण शिक्षा को स्पष्ट करते हुए कहा गया था, ''पर्यावरण शिक्षा के दायित्वों को जानने तथा विचारों को स्पष्ट करने की वह प्रक्रिया है जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति और जैव-भौतिकी परिवेश के मध्य अपने आपकी संबद्धता को पहचानने और समझने के लिए आवश्यक कौशल और अभिवृत्ति का विकास कर सके। पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण की गुणवत्ता से संबंधित प्रकरणों के लिए व्यवहारिक संहिता निर्माण करने तथा निर्णय लेने की आदत को भी व्यवस्थित करती है।''[1]

अमेरिका के कीले विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम पर्यावरण को पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया। 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा स्टॉकहोम (स्वीडन) में आयोजित 119 देशों के सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) का जन्म हुआ। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक विज्ञान और सांस्कृतिक परिषद् (UNESCO) के सहयोग से एक नयी कार्य संस्था इंटरनेशनल एनवायरनमेंटल एजुकेशन प्रोग्राम (IEEP) का गठन किया इस संस्था ने पर्यावरण शिक्षा की वैज्ञानिक रूपरेखा निर्मित कर कार्य को गति दी। इसके तहत कार्यक्रम को निम्नांकित स्वरूपों में विभाजित किया गया।

- कार्यक्रम के लिए विश्व के देशों का वर्गीकरण।
- अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर की बैठकों का आयोजन।
- अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय बैठकों में सहयोग अध्ययन, सर्वेक्षण व शोध कार्य।

- पर्यावरण संबंधी साहित्य का प्रकाशन।
- शिक्षण प्रशिक्षण हेतु विशेष कार्यक्रम।

यहाँ विशेष बात यह है कि भारत भी (IEEP) के कार्यक्षेत्र का हिस्सा बना और मार्च 1983, फरवरी 1985, अप्रैल 1987 एवं फरवरी 1989 में IEEP के सहयोग से भारत में विभिन्न कॉन्फ्रेंस और कार्यगोष्ठियाँ आयोजित की गयीं। आज भारत देश पर्यावरण शिक्षा के प्रति संवेदनशील है और इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने को तत्पर है।

पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य

यूँ तो भारत में पर्यावरण संरक्षण व उससे प्रेम की भावना एक सांस्कृतिक विरासत रही है। भारत के विभिन्न व्रत, त्योहारों में प्रकृति संरक्षण का संदेश समाहित होता है, किंतु तीव्र औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के साथ बदलती सामाजिक व्यवस्थाओं ने जनसामान्य में पर्यावरण के प्रति उदासीनता का भाव विकसित किया है, यही कारण है कि हमें भी पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास करना होगा।

IEEP द्वारा आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यगोष्ठी, जो कि 1975 में 13 से 22 अक्तूबर तक मध्य बेलग्रेड (यूगोस्लाविया) में संपन्न हुयी पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारण में सर्वाधिक सफ़ल रही थी। इस कार्यगोष्ठी में बने बेलग्रेड घोषणा पत्र (Belgrade Charter) ने पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्य व उद्देश्य के विस्तृत क्षेत्र की तरफ़ हमारा ध्यान आकृष्ट किया।

बेलग्रेड कार्यगोष्ठी में विभिन्न दस्तावेज़ों को अंतिम रूप दिया गया, जो आगे चलकर तिविलिसी (14–26 अक्तूबर 1977) अंतर्राज्यीय कॉन्फ्रेंस का आधार बने। इन ढेरों प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय बैठकों, सम्मेलनों की अनुशंसा के आधार पर पर्यावरण शिक्षा के निम्नांकित प्रमुख उद्देश्य निर्धारित हुए।[2]

1. पर्यावरण शिक्षा सभी व्यक्ति व समाज को संपूर्ण पर्यावरण और उससे संबंधित समस्याओं के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता देने में सहायक हो।
2. पर्यावरण शिक्षा सभी व्यक्ति, समाज व समुदाय को संपूर्ण पर्यावरण और उससे संबंधित समस्याओं की आधारभूत समझ प्राप्त करने व उसमें मनुष्य की ज़िम्मेदारी की भूमिका निभाने में सहायक हो।
3. पर्यावरण शिक्षा सभी व्यक्ति, समाज और समुदाय को पर्यावरण के लिए गहरी चिंता करने, सामाजिक दायित्व निभाने और उसकी सुरक्षा और सुधार लाने के लिए किए जा रहे कार्यों में प्रेरित करने में सहायक हो।
4. पर्यावरण समस्याओं के हल खोजने के कौशल प्राप्त करने में सहायक हो।
5. पर्यावरण शिक्षा सभी व्यक्ति, समाज और समुदाय को पर्यावरणीय उपाय तथा शैक्षिक कार्यक्रमों को परिस्थितिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सौंदर्यपरक और शैक्षिक घटकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने में सहायक हो।
6. पर्यावरण शिक्षा व्यक्ति, समाज और समुदाय को पर्यावरणीय समस्याओं का उचित ढंग से हल निकालने की आश्वस्तता के प्रति महत्ता और ज़िम्मेदारी की भावना विकसित करने में सहायक हो।

अर्थात् पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति, समाज व समुदाय में पर्यावरण के प्रति जागरूकता, ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल, मूल्यांकन कुशलता व संभागिता को सुनिश्चित करना है। जनसामान्य को यह सिखाना है कि वह प्रकृति से उतना ही ले जितनी उसे ज़रूरत है, उससे इस प्रकार ले कि पर्यावरण को नुकसान ना हो। हमारी शिक्षा व्यवस्था ने भी पर्यावरण शिक्षा के इन उद्देश्यों को स्वीकार किया है और इनके अनुरूप कार्य योजना को विस्तार देने हेतु प्रयत्नशील है।

पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता

नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के खंड 8 में कहा गया है कि 'वातावरण के प्रति जागरूकता उत्पंन करने की अत्यधिक आवश्यकता है। यह बालकों से आरंभ करके सभी आयु व समाज के सभी वर्गों में व्याप्त होनी चाहिए।' हम सभी जानते हैं कि औद्योगिक क्रांति व वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप सुख-सुविधा के संसाधनों ने चारों ओर प्रदूषण फैलाया है। इनसे बचाव हेतु आवश्यक जागरूकता कार्यक्रम पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से भली प्रकार दिया जा सकता है। इसी तरह विशाल प्राकृतिक संसाधन की भी कहीं न कहीं अपनी एक सीमा है। उनके उचित और बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग की ज़रूरत जनसामान्य में पैदा करने हेतु पर्यावरण शिक्षा अति आवश्यक है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि सामान्य प्राकृतिक चक्र को अव्यवस्थित कर रही है। अत: तत्संबंधी जागरूकता हेतु भी पर्यावरण शिक्षा अति आवश्यक प्रतीत होती है। आज पर्यावरण प्रदूषण संपूर्ण विश्व की ज्वलंत समस्या है, अत: इस समस्या की अनदेखी के परिणाम भविष्य में बड़े ही घातक हो सकते हैं। विश्व समुदाय को इन प्राकृतिक समस्याओं की जानकारी देना व उनके निराकरण के उपायों से अवगत कराने के लिए पर्यावरण शिक्षा अति आवश्यक है। विज्ञान तकनीकी विकास और परिस्थितिकी के संदर्भ में बदलते सामाजिक मूल्यों का मूल्यांकन करने हेतु भी पर्यावरण शिक्षा की विशेष उपादेयता है। इसकी मदद से मनुष्य की सोच, उसके दृष्टिकोण व व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जा सकता है।

पर्यावरण शिक्षा का प्रारूप

भारत में 1988-89 से पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने प्राथमिक व हाईस्कूल के पर्यावरण संबंधी पाठ्यक्रम का निर्धारण भी किया है। परिषद् ने तत्संबंधी पाठ्यपुस्तकें, निर्देशन सामग्री, सूचनात्मक पुस्तकें व दृश्य-श्रव्य सामग्री भी निर्मित की है।[3]

यहाँ ध्यान देना होगा कि पर्यावरण शिक्षा सिर्फ तथ्यों की जानकारी दे दिए जाने तक सीमित नहीं है। चूँकि यहाँ शिक्षा का उद्देश्य बालक-बालिकाओं में तत्संबंधी जागरूकता का संचार भी है। अत: पर्यावरण शिक्षा का प्रारूप विस्तृत होना चाहिए। जिसमें निम्नलिखित पक्ष समाहित किए जा सकते हैं–

(अ) विद्यालयी पाठ्यक्रम

किसी भी विषयवस्तु को शिक्षा में समाहित करने का सबसे सहज तथा प्रभावशाली माध्यम विद्यालयी पाठ्यक्रम होता है। पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयवस्तु कक्षा शिक्षण के माध्यम से

बालकों तक स्वत: पहुँच जाती है। यही कारण है कि *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986* ने शिक्षा के प्रत्येक स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा) पर पर्यावरण शिक्षा की महत्ता को स्वीकार कर तत्संबंधी स्कूली पाठ्यक्रम निर्माण का उत्तरदायित्व एन.सी.ई.आर.टी. तथा उच्च शिक्षा स्तर के पाठ्यक्रम निर्माण का उत्तरदायित्व इच्छुक विश्वविद्यालयों को सौंपा। विद्यालय पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा को समाहित करने के साथ-साथ हमें इस तथ्य की ओर भी अवश्य ध्यान देना होगा कि यहाँ तत्संबंधी सूचनाएँ शिक्षार्थियों तक पहुँचा देना ही हमारा उद्देश्य नहीं है, यहाँ उद्देश्य तत्संबंधी जागरूकता व संवेदनशीलता उत्पन्न करना भी है। अत: प्राथमिक स्तर पर अपनी प्रकृति, अपने आस-पास के पेड़-पौधों, पक्षियों, जल, थल आदि के लिए बालकों में प्रेम का भाव उत्पन्न करने वाले गीत व कथा, कहानी आदि बड़े ही लाभप्रद हो सकेंगे।

इसके साथ ही तत्संबंधी क्रियाकलाप, जैसे–पौधों को पानी देने से पौधा सूख जाने से बच सका, फूलों को न तोड़ने से वह उससे होने वाले दर्द से बच सका जैसी छोटी-छोटी कहानियाँ उसके दिलो-दिमाग पर ऐसा असर छोड़ सकने में सक्षम हैं कि कक्षा 1-2 का छात्र सुबह-सुबह घर के आस-पास के पौधों को पानी देने को तत्पर दिखाई देगा। हमें अवश्य ही ऐसे छोटे-छोटे गीत व कहानियाँ बच्चों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर इन्हें विस्तार देकर सूचनाप्रद बनाना लाभप्रद हो सकेगा। इस स्तर पर विद्यार्थी प्रकृति, व प्राकृतिक संसाधनों के विषय में समझने लगते हैं। वह अपनी खुद की हानि-लाभ के साथ-साथ सामाजिक लाभ-हानि के संबंध में भी संवेदनशील हो उठते हैं। मानव कल्याण और देश हित में उनकी रुचि दिखाई देती है। अत: इस स्तर पर पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम में पर्यावरण की समस्या और उनके घातक परिणामों से छात्र-छात्राओं को परिचित कराया जा सकता है।

उच्च शिक्षा में पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम में तथ्यात्मक विश्लेषण, वास्तविक स्थिति, समस्या के कारण, उसके समाधान के उपाय आदि को समाहित किया जाना लाभप्रद है। इस स्तर तक पाठ्यक्रम को इतना प्रभावपूर्ण बनाना होगा कि यहाँ से विभिन्न व्यवसायों में प्रवेश कर युवा वर्ग पर्यावरण संस्थान के प्रति संवेदनशील रह सके। एक इंजीनियर को उसके द्वारा बनायी गयी मशीन से उत्पन्न प्रदूषण की जानकारी अवश्य हो और वह इसके बचाव के लिए उपायों की खोज भी कर सके, ऐसी तत्परता उसमें अवश्य पैदा की जा सके।

इसी प्रकार एक डॉक्टर, एक वैज्ञानिक, एक शिक्षक, एक वकील, एक प्रशासनिक अधिकारी व एक उद्योगपति को यह अवश्य पता हो कि वह कहाँ-कहाँ पर्यावरण के प्रति असंवेदनाशील है और उसे कहाँ-कहाँ सावधानी बरतने की आवश्यकता है। बेहतर उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक उद्योगपति युवा ने यदि एक कारखाना स्थापित कर उच्च स्तर का उत्पादन किया तो बड़ी अच्छी बात है, यहाँ उसकी डिग्री का बेहतर उपयोग हुआ लेकिन कारखाने से निकले विषैले पानी ने यदि नदी नालों को विषैला कर दिया तो बात ठीक नहीं है। अत: उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर तत्संबंधी व्यवसाय व प्रत्येक व्यवसाय के साथ पर्यावरण को हो रही हानि की जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए। नि:संदेह इनसे बचाव का कार्य भी पाठ्यक्रम का हिस्सा होगा।

धेवान (2008) ने शिक्षक प्रशिक्षुओं पर किए गए अपने एक अध्ययन में पाया कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की छात्राध्यापकों व छात्राध्यापिकाओं में पर्यावरण जागरूकता विकसित करने में कोई सार्थक भूमिका नहीं है।[4] यह स्थिति ठीक नहीं है। उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में पर्यावरण जागरूकता संबंधी सूचनाएँ व क्रियाकलाप अवश्य समाहित होने चाहिए। कई व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा को जोड़ा गया है। इंजीनियरिंग कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में तथा मेडिकल कॉलेजों के पाठ्यक्रम में एक अवयव के रूप में पढ़ाया जा रहा है। अर्थशास्त्र में नया प्रश्नपत्र 'अर्थशास्त्र में पर्यावरणीय अध्ययन' के नाम से जोड़ा गया है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में स्कूल ऑफ़ एन्वायरनमेंटल साइंस की स्थापना की गयी है।'[5] शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी पर्यावरण संरक्षण संबंधी कार्ययोजनाओं को समाहित किया जाना चाहिए। दास ने पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण में मुख्यत: अनुकूलता, आकर्षक, उपलब्धता व सर्वसुलभता पर ज़ोर दिए जाने की बात को महत्वपूर्ण माना।[6]

(ब) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ

पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयवस्तु छात्र-छात्राओं को प्राय: तथ्यात्मक सूचना प्रदान करने का काम करती है। इन तथ्यात्मक सूचनाओं को पाठ्य सहगामी क्रियाओं के माध्यम से क्रियात्मक रूप दिया जा सकता है। उदाहरणस्वरुप माध्यमिक स्तर की कक्षा में पढ़ाये गए पाठ्यक्रम की उपयोगिता व देखभाल से प्राप्त तथ्यात्मक सूचना को वृक्षारोपण का कार्यक्रम या पर्यावरणीय खेल आदि के द्वारा क्रियात्मक रूप दिया जा सकता है। विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण को प्रोत्साहन देने के लिए पर्यावरण गीत प्रतियोगिता, पर्यावरण नाट्य प्रतियोगिता, पर्यावरण चित्रकला प्रतियोगिता व वाद-विवाद और निबंध प्रतियोगिता आदि का आयोजन भी किया जा सकता है। इन प्रतियोगिताओं के माध्यम से विचार विनिमय व संप्रेषण तो हो ही सकेगा। छात्र-छात्राएँ खुलकर अपनी बात कह सकेंगे। उनमें पर्यावरण संरक्षण की रुचि विकसित हो सकेगी।

उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रकृति संरक्षण कार्य वृहद पौधारोपण, जलाशयों की सफाई, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण आदि को पाठ्य सहगामी क्रियाओं में सम्मिलित कर पर्याप्त जागरूकता विकसित की जा सकती है। इसी प्रकार पर्यावरण अध्ययन जैसे विभिन्न शोध प्रोजेक्ट, क्रियात्मक अनुसंधान, पर्यावरण स्थिति प्रतिवेदन तथा पर्यावरण विचार-विनिमय कार्यक्रमों, जैसे सेमिनार, कार्यगोष्ठी, विचारगोष्ठी आदि पर्यावरण शिक्षा हेतु लाभप्रद हो सकते हैं।

(स) जागरूकता कार्यक्रम तथा क्रियाकलाप

विद्यालयों और महाविद्यालयों तक पर्यावरण शिक्षा का विस्तार कर संबंधित समस्या का समाधान पूरी तरह हो सकना संभव नहीं है। प्रकृति की देखभाल का ज़िम्मा धरती पर रहने वाले प्रत्येक मनुष्य का है, इसलिए उसके संरक्षण संबंधी जागरूकता का विस्तार जन-जन तक पहुँचाना होगा। भारत में पर्यावरण के क्षेत्र में विभिन्न आयामों की जानकारी प्राप्त करने, उन पर विचार विमर्श करने और उसे हर स्तर और हर आयु वर्ग के लोगों तक पहुँचाने के लिए आज अनेक

गतिविधियाँ आयोजित की जा रही हैं। इनका संचालन भारत सरकार और राज्य सरकारों के पर्यावरण विभाग के दिशा निर्देश पर आधारित है। इन पर होने वाला आर्थिक व्यय भी दोनों अभिकरण मिलजुल कर कर रहे हैं। क्रियान्वयन का कार्य शैक्षिक संस्थाएँ, पर्यावरण के क्षेत्र में कार्यरत् स्वयंसेवी संस्थाएँ, नेहरू युवा केंद्र, विश्वविद्यालयों के कतिपय विभाग, स्काउट एवं गाइड्स की स्थानीय शाखाएँ, लायन्स एवं रोटरी क्लब आदि के माध्यम से किया जाता है। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य पर्यावरण के बारे में सामान्य जानकारी का एकत्रीकरण, नयी जानकारी तथा सूचनाओं की खोज, लोगों तक पहुँचाने के लिए कार्यक्रमों की तैयारी व विभिन्न कार्यकलापों द्वारा जानकारी तथा सूचना लोगों तक पहुँचाना है।

यहाँ ध्यान देना होगा कि पर्यावरण संरक्षण संबंधी नीति नियम बना देने, सम्मेलनों तथा गोष्ठियों आदि से कोई विशेष लाभ तब तक न होगा जब तक कि हम अपनी प्रकृति से प्रेम करना न सीख सकेंगे। चौहान तथा कठैत इसके लिए भारतीय पारंपरिक आदर्शों व नीति नियमों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर प्रकृति प्रेम के भाव को अंगीकृत करने पर ज़ोर देते हैं।[7]

पारंपरिक भारतीय रीति–रिवाज़ पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों का पूजन इनके संरक्षण के साथ–साथ इनके प्रति प्रेम का भाव पैदा करते हैं। अतः इन रीति–रिवाज़ों को पुनर्जीवित करना भी पर्यावरण शिक्षा का एक आवश्यक अंग है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले प्रौढ़ों के लिए अनौपचारिक माध्यम से पर्यावरणीय शिक्षा दी जानी भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकती है। इन समूहों में धार्मिक और पौराणिक कथाओं द्वारा पर्यावरण संरक्षण संबंधी सकारात्मक संदेश प्रेषित किए जा सकते हैं। चलचित्र, रेडियो, दूरदर्शन, प्रदर्शनी, नारे, पोस्टर आदि के माध्यम से भी देश के जन–जन तक अपने पर्यावरण के प्रति प्रेम व उसकी देख–रेख और संरक्षण की जागरूकता विकसित की जा सकती है।

स्पष्ट है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण प्रदूषण एक ऐसी समस्या है जिससे संपूर्ण विश्व ग्रस्त है। स्थितियाँ बद् से बद्तर हो जाएँ उससे पूर्व ही इस दिशा में आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। शिक्षा को इस दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। आज यह ज़रूरी दिखाई देता है कि आधुनिक जीवन शैली के विस्तार, विकास की गति के साथ तालमेल के बिठाने के क्रम में अपनी प्रकृति के साथ ज़्यादा छेड़–छाड़ न की जाए। नवीन वैज्ञानिक खोजों के साथ यह ज़रूर देखा जाए कि उनके प्रयोग से पर्यावरण को नुकसान न हो। उनसे प्राप्त लाभ का वज़न उनसे होने वाली हानि से कहीं कम न हो। विकास व विस्तार की गति के साथ पर्यावरण के साथ कोई समझौता न स्वीकार करने की मानसिकता पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाई जा सकती है। अतः इस दिशा में हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए।

संदर्भ

गोयल, एम.के. 2012. *पर्यावरण शिक्षा.* अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा. पृ. 374-375

चौहान, रमेश सिंह तथा कठैत, मंजू. 2009. ''पर्यावरण शिक्षा एक ज्वलंत समस्या का अंत'', *शिक्षा चिंतन*, 8,32, त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर, पृ. 27

टंडन, उमा तथा गुप्ता अरुणा. 2000. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* पूर्व संदर्भित पृ. 596

_____. 2012. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक.* आलोक प्रकाशन, आगरा पृ. 595

दास, बी.डी. 1987. इवैल्युएशन एंड मॉनिटरिंग ऑफ़ ऐन्वायरनमेंटल एजुकेशन प्रोग्राम विद स्ट्रिजन टू एनर्जी इश्यू इन डेवलपिंग कंट्री, देखिये इन्वायरनमेंटल एजुकेशन फ़ॉर कंज़र्वेशन एंड डेवलपमेंट, देशबंधु तथा जी. बेरब्रेट द्वारा संपादित, इंडियन ऐन्वायरनमेंटल सोसाइटी, इंद्रप्रस्थ स्टेट, नयी दिल्ली, पृ. 527

धेवान, सीमा. 2008. ऐन्वायरनमेंटल अवेयरनेस ऑफ़ ''प्यूपिल टीचर'', इंडियन जर्नल आफ़ टीचर एजुकेशन, अन्वेषिका, नेशनल काउंसिल फ़ॉर टीचर एजुकेशन, 5, 2, दिसंबर, नयी दिल्ली, पृ. 46

फाइनल रिपोर्ट इंटरनेशनल वर्किंग मीटिंग ऑन ऐनवायरमेंटल एजुकेशन द स्कूल करिकुलम. 1987. (इंटरनेशनल यूनियन फ़ॉर कंज़र्वेशन केयर एंड नेचुरल रिसोर्सेज़ 1970) उद्धृत अग्रवाल के.सी. ऐनवायरनमेंटल बायोलॉजी एग्रो बोटेनिकल पब्लिशर्स, बीकानेर, पृ. 306

मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक का शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन

हंसराज पाल*
नीलम वर्मा**
आशा पाल***

पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्यपुस्तकों का निर्माण होता है। पुस्तकों का निर्माण, उनका मूल्यांकन एवं परिमार्जन सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित नवीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन किया गया है। चूँकि पुस्तक का उपयोग पठन-पाठन में विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों ही करते हैं। अतः प्रस्तुत पुस्तक की गुणवत्ता एवं अन्य पहलुओं पर शिक्षकों की प्रतिक्रिया का अध्ययन किया गया है। पुस्तक के मूल्यांकन से पता चलता है कि प्रकाशकों की साख अच्छी एवं लेखकगण योग्य पाए गए। पुस्तक में रंगीन चित्रों का संयोजन एवं सहायक पुस्तकों की सूची नहीं पाई गई। पुस्तक में परीक्षा से संबंधित सुझाव नहीं थे परंतु विषय-वस्तु में प्रमाणिकता पाई गई।

प्रस्तावना

विद्यार्थी, शिक्षक एवं पाठ्यचर्या शिक्षा के अभिन्न अंग हैं। पाठ्यचर्या विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच सीखने-सिखाने की कड़ी के रूप में काम करती है। पाठ्यचर्या के अंतर्गत समस्त वांछित गतिविधियाँ आती हैं, जो विद्यालय के तत्वावधान में संचालित होती हैं और जो विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक होती हैं। पाठ्यविवरण की पूर्ति हेतु अध्ययन मण्डल द्वारा पाठ्यपुस्तकें अनुशंसित की जाती हैं। पाठ्यविवरण वे हैं,

**आचार्य एवं संकायाध्यक्ष,* शिक्षा अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
***शोध छात्रा* शिक्षा अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
****सहायक प्राध्यापिका,* शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

जिनमें इच्छित अधिगम का संगठन एवं संरचना अध्यापक से अध्यापक को एवं अध्यापक से विद्यार्थियों को संप्रेषित की जाती हैं। (चांडलर, 1985)पाठ्यपुस्तकों से अपेक्षा की जाती है कि वे संज्ञानात्मक, भावात्मक, मनोगामक आदि पक्षों के उद्देश्यों की पूर्ति करेंगी किंतु वास्तव में पाठ्य पुस्तकें इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर पाती हैं।

अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बच्चों की रुचि, उम्र और आवश्यकतानुसार पाठ्यपुस्तकें शिक्षण के स्तर को प्रतिबिंबित तथा स्थापित करती हैं। पाठ्यपुस्तकों से जहाँ एक ओर शिक्षक लाभांवित होते हैं, वहीं दूसरी ओर बालकों के लिए भी पाठ्यपुस्तकों के अनेक लाभ होते हैं। नवीन शिक्षकों तथा छात्राध्यापकों के लिए तो पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करना बहुत ही आवश्यक है। निश्चय ही शिक्षण को सफ़ल बनाने में पाठ्यपुस्तकों का महत्वूपर्ण स्थान है।

औचित्य

पाठ्यपुस्तक गुणवत्तापूर्ण है अथवा नहीं इसका ज्ञान, हमें इनके मूल्यांकन द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। मूल्यांकन द्वारा हमें यह ज्ञात हो सकता है कि पाठ्यपुस्तक किन-किन उद्देश्यों की पूर्ति कर रही हैं तथा कौन-से उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो रही है अथवा आंशिक रूप से हो रही है। अच्छी पाठ्यपुस्तक के कौन-से गुण पाठ्यपुस्तक में हैं तथा कौन से लाए जाने हैं। पाठ्यपुस्तक लेखकों को पाठ्यपुस्तक पर प्रतिपोष भी मूल्यांकन से ही प्राप्त होता है और फिर से सुधार के तरीके भी पता चलते हैं। चूँकि पाठ्यचर्या, निरंतर परिवर्तित होती रहती है अतः पाठ्यपुस्तकों में भी निरंतर परिवर्तन होना ही चाहिए। इसे अद्यतन (updated) बनाए रखने के लिए भी मूल्यांकन आवश्यक है।

मूलतः इनका मूल्यांकन इसके उपभोक्ताओं तथा अध्यापकों एवं विद्यार्थियों द्वारा किया जाना चाहिए। पाठ्यपुस्तक के मूल्यांकन के क्षेत्र में अनेक शोध कार्य हुए हैं, जैसे सेठिया (1970) ने मध्य प्रदेश की माध्यमिक कक्षा की राष्ट्रीयकृत सामान्य विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। वाल्वलकर (1971) ने कक्षा प्रथम, तृतीय तथा चतुर्थ की गणित विषय की पाठ्यपुस्तकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। खेर (1972) ने कक्षा चौथी की इतिहास की पाठ्यपुस्तक का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। पौक्षे (1972) ने कक्षा चौथी की भूगोल पाठ्यपुस्तक का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया। केकरे(1979) ने बाल साहित्य व पाठ्यपुस्तकों में प्रस्तुत विषय वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। सिंह (1979) ने इंदौर विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम हेतु पाठ्य सामग्री का मूल्यांकन किया। शर्मा (1985) ने प्राथमिक स्तर पर विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं भाषा पाठ्यपुस्तकों में उपयोग की गई भाषा की व्यापकता का अध्ययन किया। पिपरइया (1989) ने भाषा व सामाजिक अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। अंबारासु (1992) ने मूल्योन्मुखता का अध्ययन, उच्च प्राथमिक स्तर की अंग्रेज़ी भाषा की पाठ्यपुस्तकों में किया। पाटीदार (1994) ने सामाजिक अध्ययन कक्षा आठवीं की दो विभिन्न पाठ्यपुस्तकों में वर्णित सामाजिक पूर्वाग्रहों का पाठ्यक्रम विकास हेतु विश्लेषण किया।

डोके (1994) ने एम.एड. स्तर पर शैक्षिक प्रशासन के पाठ्य विवरणों का मूल्यांकन एवं वैकल्पिक पाठ्य विवरण प्रतिमानों का निर्माण किया। मोहन्ती (1987) ने 10वीं कक्षा की इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का भौतिक व शैक्षणिक विशेषताओं के आधार पर मूल्यांकन किया। सत्यार्थी (2003) ने प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण के शिक्षक कार्यक्रमों का शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों द्वारा मूल्यांकन पर शोध कार्य किया। तावड़े (2006) ने राज्य संसाधन केंद्र मध्य प्रदेश द्वारा प्रकाशित साक्षरता की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन किया। सोनी (2006) ने पर्यावरण शिक्षण हेतु मध्य प्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा निर्धारित पुस्तकों का समीक्षात्मक अध्ययन प्राथमिक स्तर के संदर्भ में किया। एस्के (2007) ने मध्य प्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा निर्धारित हिंदी पाठ्यपुस्तकों में मूल्योन्मुखता का अध्ययन कक्षा 6 से 12 तक किया। कोरी (2008) ने मध्य प्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा निर्धारित इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन (पूर्व माध्यमिक स्तर के संदर्भ में) किया। पाल एवं वर्मा (2013) ने मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्य.पुस्तक का विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन किया। यही नहीं एन.सी.ई.आर.टी. के संकाय सदस्यों द्वारा भी परिषद् द्वारा बनाई गई राष्ट्रीय स्तर की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन समय-समय पर किया जाता है। इस मूल्यांकन से पाठ्यपुस्तक सुधार की प्रक्रिया को लगातार बल मिलता है। अन्य राज्यों में भी यह प्रक्रिया चलती रहती है।

वर्तमान में मध्य प्रदेश में पाठ्यचर्या सुधार की प्रक्रिया के अंतर्गत बनाई गई कक्षा 9 की विज्ञान की पुस्तकें विद्यालयों में लागू हैं, लेकिन इन पर शोधकार्य नहीं हुआ है। इन पुस्तकों में आगे सुधार हेतु इनका मूल्यांकन किया जा सकता है। यही कारण है कि प्रस्तुत अध्ययन ''मध्य प्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक का शिक्षकों की प्रतिक्रिया के आधार पर मूल्यांकन'' की आवश्यकता प्रतिपादित होती है।

समस्या कथन

मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक का शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन।

उद्देश्य

मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक के विभिन्न पक्षों का शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन करना।

शोध प्रविधि

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध इंदौर शहर में स्थित शासकीय विद्यालयों (शासकीय कस्तूरबा कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, इंदौर, शासकीय बालक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बीजलपुर) एवं अशासकीय विद्यालयों (सनशाइन पब्लिक स्कूल, भारतीय ऐकेडमी, अम्मार बागे नौनिहाल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, प्रखर विद्यालय, सरस्वती शिशु मंदिर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, अल्पाइन

पब्लिक विद्यालय, अग्रवाल पब्लिक स्कूल, मालव शिशु विहार, फ़ादर एंजिल स्कूल) में विज्ञान विषय का अध्यापन कार्य करने वाले 46 शिक्षकों के सोद्देश्य न्यादर्श पर किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त संकलन हेतु शोधकों द्वारा निर्मित पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन प्रतिक्रिया मापनी का उपयोग किया गया।

प्रदत्त संकलन विधि

प्रदत्तों के संकलन हेतु सर्वप्रथम विद्यालय में जाकर प्राचार्य से अनुमति प्राप्त की गई। शिक्षकों से संपर्क करने के पश्चात् उन्हें पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन व प्रतिक्रिया मापनी के परीक्षण के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान की गई। सभी चयनित न्यादर्श को प्रतिक्रिया मापनी को हल करने से संबंधित आवश्यक निर्देश दिए गए थे। प्रतिक्रिया मापनी पूर्ण हल करने के बाद सभी शिक्षकों से प्रतिक्रिया मापनी वापस ले ली गई।

परिणाम एवं विवेचना

शिक्षकों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं की आवृतियों के आधार पर प्रत्येक कथन हेतु औसत प्रतिक्रियाएँ प्राप्त कर तालिका में प्रस्तुत कर तत्पश्चात् उसकी विवेचना की गई।

तालिका 1

मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक के मूल्यांकन हेतु शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं को दर्शाती तालिका

क्रमांक	*कथन*	*पू.स.*	*स.*	*अनि.*	*अस.*	*पू.अस.*	*औसत*
1.	पाठ्यपुस्तक का कागज़ गुणवत्ता वाला है।	07	04	02	19	14	2.36
2.	पाठ्यपुस्तक के प्रकाशकों की साख अच्छी है।	10	30	04	01	01	4.02
3.	विद्यार्थियों के लिए विषयवस्तु रुचिकर है।	13	14	16	03	–	3.80
4.	पाठ्यपुस्तक योग्य लेखकों द्वारा रचित है।	13	16	03	12	02	3.56
5.	पाठ्यपुस्तक में विज्ञान संबंधी सिद्धांत दिए गए हैं।	17	15	04	02	08	3.67
6.	विषयवस्तु का संगठन उचित क्रम में नहीं दिया गया है।	10	14	05	14	03	2.52

क्रमांक	कथन	पू.स.	स.	अनि.	अस.	पू.अस.	औसत
7.	पाठ्यपुस्तक में अक्षरों का आकार उपयुक्त है।	12	24	05	05	–	3.92
8.	पाठ्यपुस्तक में जो तथ्य दिए गए हैं वे प्रामाणिक नहीं हैं।	07	04	11	18	06	3.26
9.	पाठ्यपुस्तक में उदाहरणों का अधिक प्रयोग किया गया है।	07	11	02	14	12	2.71
10.	पाठ्यपुस्तक में लघु वाक्यों का उपयोग किया गया है।	06	21	07	04	08	3.45
11.	पाठ्यपुस्तक में चित्र पर्याप्त मात्रा में हैं।	13	23	01	06	03	3.80
12.	पाठ्यपुस्तक का औचित्य बताया गया है।	24	16	01	02	03	4.80
13.	पाठ्यपुस्तक के लिए सुस्पष्ट उद्देश्य नहीं बताए गए हैं।	06	15	08	14	03	2.84
14.	पाठ्यपुस्तक में वर्तनी संबंधित त्रुटियाँ नहीं हैं।	08	13	14	05	06	2.95
15.	पाठों का आकार विद्यार्थियों के हिसाब से बड़ा नहीं है।	10	16	03	13	04	1.76
16.	पाठ्यपुस्तक की भाषा विद्यार्थियों के लिए सरल है।	20	17	04	01	04	4.01
17.	पाठ्यपुस्तक में रंगीन चित्रों का संयोजन नहीं दिया गया है।	15	19	05	03	04	2.17
18.	पाठ्यपुस्तक में अध्याय के अंत में सारांश नहीं दिया गया है।	06	11	08	13	08	2.60
19.	पाठ्यपुस्तक में प्रायोगिक कार्यो की सूची दी गई है।	10	16	09	06	05	3.43
20.	पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु विद्यार्थी स्वयं पढ़कर सीख सकते हैं।	08	18	08	09	03	2.58
21.	पाठ्यपुस्तक देखकर पढ़ने की रुचि जागृत नहीं होती है।	16	12	12	–	06	2.30
22.	पाठ्यपुस्तक में दैनिक जीवन से संबंधित उदाहरण दिए गए हैं।	15	20	04	05	02	3.89

क्रमांक	*कथन*	*पू.स.*	*स.*	*अनि.*	*अस.*	*पू.अस.*	*औसत*
23.	पाठ्यपुस्तक के अध्यापन के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।	09	08	08	17	04	2.86
24.	पाठ्यपुस्तक में सहायक पुस्तकों की सूची दी गई है।	08	10	04	19	14	2.34
25.	पाठ्यपुस्तक का मूल्य उचित है।	13	26	04	03	–	4.06
26.	पाठ्यपुस्तक का बाह्य स्वरूप आकर्षक नहीं है।	15	11	17	03	–	2.57
27.	पाठ्यपुस्तक में तकनीकी एवं कठिन शब्दों के लिए अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का उपयोग किया गया है।	09	19	06	12	–	3.54
28.	पाठ्यपुस्तक की सहायता से शिक्षकों को विषयवस्तु समझाने में आसानी होती है।	13	16	06	04	07	3.52
29.	पाठ्यपुस्तक में प्रयोगात्मक कार्यों से संबंधित अध्याय हैं।	15	22	02	05	02	3.93
30.	पाठ्यपुस्तक में गृहकार्य से संबंधित सुझाव दिए गए हैं।	13	17	05	09	02	3.65
31.	पाठ्यपुस्तक में परीक्षा के लिए सुझाव दिए गए हैं।	04	04	01	15	22	1.97
32.	पाठ्यपुस्तक के उपयोग के लिए विशेष आवश्यकताएँ (कर्मचारी, उपकरण, सुविधाएँ) नहीं चाहिए।	05	11	09	13	08	3.17
33.	पाठ्यपुस्तक में विषय सूची दी गई है।	11	26	05	02	02	3.91
34.	पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु पूर्व कक्षा से संबंधित नहीं है।	08	12	07	14	05	2.91
35.	पाठ्यपुस्तक में परियोजना कार्य दिया गया है।	24	13	03	06	–	4.19
36.	पाठ्यपुस्तक में प्रत्येक इकाई में गतिविधि प्रश्न दिए गए हैं।	17	23	03	02	–	4.17

तालिका 1 के अवलोकन से विदित होता है कि कागज़ की गुणवत्ता के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक को देखने पर वास्तव में लगता है कि कागज़ की गुणवत्ता निम्न है। प्रकाशकों द्वारा पुस्तकों के मूल्य में कमी करने के कारण वे कागज़ की गुणवत्ता पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते हैं।

पाठ्यपुस्तक के प्रकाशकों की साख के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह है कि पुस्तक का प्रकाशक 'मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र' है जिसकी साख अच्छी है।

विषयवस्तु के रुचिकर होने के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक में प्रत्येक विषयवस्तु को संगठित रूप से प्रस्तुत किया गया है जो कि बिंदुक्रम, समयक्रम एवं तुलना के आधार पर है। इसमें दैनिक जीवन के उदाहरण भी सम्मिलित हैं, जिससे विषयवस्तु रुचिकर लगती है। उदाहरण के तौर पर, अध्याय 11 में पृष्ठ क्रमांक 170–171 पर जंतु कोशिका एवं पादप कोशिका तथा प्रोकेरियोटिक कोशिका एवं यूकेरियोटिक कोशिका में अंतर बिंदुक्रम के आधार पर दिया गया है। अध्याय 12 में पृष्ठ क्रमांक 190 पर पादप जगत का वर्गीकरण प्रवाहचित्र के माध्यम से दिया गया है, जिससे विषयवस्तु रुचिकर लगती है।

पाठ्यपुस्तक योग्य लेखकों द्वारा रचित है, के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ क्रमांक (ii) को देखने पर लेखकों की जानकारी प्राप्त होती है जो कि योग्य लेखक हैं तथा कई वर्षों से अध्ययन कार्य में संलग्न रहे हैं।

पाठ्यपुस्तक में विज्ञान संबंधी नियमों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि उसके अनुरूप नियम दिए गए हैं। उदाहरण के तौर पर, अध्याय 3 'गति व बल' में न्यूटन के गति का नियम, आर्कमिडीज का सिद्धांत दिए गए हैं। अध्याय 4 'कार्य, ऊर्जा और शक्ति' में ऊष्माधारिता, विशिष्ट ऊष्मा आदि की गणना के नियम दिए गए हैं। अध्याय 13 'पर्यावरण' में ऊर्जा प्रवाह का नियम भोजन श्रृंखला, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र दिए गए हैं। अध्याय 9 'जैव जगत संगठन' में पादप व तंतुओं की ऊतक संरचना एवं उनमें अंतर बताया गया है। इसी प्रकार अन्य अध्यायों में भी विज्ञान संबंधी नियम दिए गए हैं।

पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु के उचित क्रम के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई है। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक के प्रत्येक अध्याय में विषयवस्तु के संगठन का उचित क्रम है। इसके अंतर्गत किसी भी संकल्पना का सर्वप्रथम अर्थ, परिभाषा, प्रकार, कार्य, उपयोग एक संगठित रूप में दिया गया है, जिससे विषयवस्तु आसानी से समझ में आ जाती है। उदाहरण स्वरूप अध्याय 9 'तत्त्वों की आर्वत सारणी' में तत्त्वों के वर्गीकरण का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ क्रमांक 130 पर समय क्रमानुसार दिया गया है। अध्याय 17 का पृष्ठ क्रमांक 270 पर आवास–अर्थ, प्रकार, आवश्यकता आदि संगठित रूप में दिया गया है।

पाठ्यपुस्तक में अक्षरों का आकार की उपयुक्तता के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक

को पढ़ने पर अक्षर आसानी से नज़र आ जाते हैं तथा उनका आकार उपयुक्त है।

पाठ्यपुस्तक में जो तथ्य दिए गए हैं, उनकी प्रामाणिकता के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई है। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि तथ्य प्रामाणिक हैं, क्योंकि उच्च स्तरीय कक्षाओं की स्तरीय पुस्तकों से तुलना करने पर यह प्रामाणिक पाए गए।

पाठ्यपुस्तक में उदाहरणों के उपयोग के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक में सभी अध्यायों में पर्याप्त उदाहरणों का उपयोग किया गया है जैसे अध्याय 10 में पृष्ठ क्रमांक 144 पर 'विलेयता' में यह बताया गया है कि आयनिक यौगिक अध्रुवीय विलायक हैं, जैसे–एल्कोहल, ईथर, बेंजीन में नहीं घुलते, त्रिसंयोजक बंधो में नाइट्रोजन अणु का बनना पृष्ठ 147 पर उदाहरणस्वरूप समझाया गया है। इसी प्रकार से प्रत्येक अध्याय में उदाहरणों का प्रयोग किया गया है।

पाठ्यपुस्तक में लघु वाक्यों का उपयोग किया गया है, के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया पायी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक को पढ़ने पर यह पता चलता है कि जहाँ वाक्य छोटे हैं, उनसे विषयवस्तु आसानी से स्पष्ट होती है। उदाहरणस्वरूप, अध्याय 11 पृष्ठ क्रमांक 168 पर अवर्णी लवक, हरित लवक की परिभाषा तथा उनके कार्य;अध्याय 12 में कॉर्डेटा के लक्षण भी छोटे-छोटे वाक्यों में दिए गए हैं जिससे आसानी से समझ में आ जाता है।

पाठ्यपुस्तक में चित्रों की पर्याप्तता के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गयी। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक को देखने पर यह पता चलता है कि 304 पृष्ठों की इस पुस्तक में कुल 214 चित्र हैं जो कि उपयुक्त है। अत: यह प्रतिक्रिया दी गई है।

पाठ्यपुस्तक में औचित्य के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक का पृष्ठ क्रमांक पढ़ने पर पता चलता है कि भौतिकी, रसायन, जीव विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों का भलीभांति वर्णन किया गया है जिससे विद्यार्थी सरलता से समझ सकें।

पाठ्यपुस्तक में सुस्पष्ट उद्देश्य के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया पायी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पाठ्यपुस्तक में दिया गया है कि पाठ्यपुस्तक का निर्माण विज्ञान के शैक्षणिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है।

पाठ्यपुस्तक में वर्तनी संबंधी त्रुटियों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त हुई। इसके संभावित कारण यह हैं कि यह योग्य शिक्षकों द्वारा रचित है तथा योग्य प्राध्यापकों द्वारा संशोधित है।

पाठ्यपुस्तक में पाठों का आकार विद्यार्थियों के हिसाब से बड़ा नहीं है, के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के अनुरूप नहीं है। कुछ अध्याय अत्यधिक छोटे हैं तथा कुछ अत्यधिक बड़े हैं। अध्याय 4 'गुरुत्वाकर्षण' अत्यधिक छोटा है। अध्याय 17 'आवास अनुकूलन एवं औषधीय पौधे' लघु है आदि।

पाठ्यपुस्तक की भाषा के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु में क्रमबद्धता होने के कारण विषयवस्तु आसानी से समझ में आ जाती है। विषयवस्तु को छोटे-छोटे वाक्यों में बाँटा गया जिससे भाषा सरल लगती है।

पाठ्यपुस्तक में रंगीन चित्रों के संयोजन के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक को देखने पर पता चलता है कि चित्र केवल श्यामश्वेत हैं। अत: यह प्रतिक्रिया दी गयी।

पाठ्यपुस्तक में सारांश के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त हुई। इसका संभावित कारण यह है कि पाठ्यपुस्तक का अध्ययन करने पर पता चलता है कि प्रत्येक अध्याय के उपरांत सारांश दिया गया है जो कि अग्रलिखित पृष्ठों पर उपलब्ध है। पृष्ठ क्रमांक 25, 50, 57, 71, 91, 107 ,127, 139 ,160, 185, 199, 217, 239, 266, 278, 295, 303

पाठ्यपुस्तक में प्रायोगिक कार्यों की सूची के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गयी। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक का अध्ययन करने पर पृष्ठ क्रमांक (vii) पर प्रायोगिक कार्यो की सूची दी गई है।

पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु विद्यार्थी स्वयं पढ़कर सीख सकते हैं, के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक की भाषा सरल एवं स्पष्ट है। विषयवस्तु क्रमबद्ध रूप से संगठित की गई है जो स्वयं पढ़कर सीखने में मदद करती है। उदाहरण–अध्याय 10 रासायनिक अभिक्रिया की संकल्पना। सरल यौगिकों के रासायनिक सूत्र एवं नामकरण यह क्रमबद्ध) तथा संगठित रूप में है, जिससे सीखने में आसानी होती है। इसी प्रकार सभी अध्यायों में विषयवस्तु सरलता, स्पष्टता एवं क्रमबद्धता से प्रस्तुत की गई है।

पाठ्यपुस्तक देखकर पढ़ने के प्रति रुचि जागृत होने के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक का बाह्य स्वरूप आकर्षक नहीं है। कागज़ उच्च गुणवत्ता वाला, सफेद तथा मोटा नहीं है। पुस्तक में रंगीन चित्रों का संयोजन नहीं है। अत: नकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त हुई।

पाठ्यपुस्तक में दैनिक जीवन से संबंधित उदाहरणों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पाठ्यपुस्तक का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि पाठ्यपुस्तक के लगभग सभी अध्यायों में दैनिक जीवन से संबंधित उदाहरण उपस्थित हैं, जैसे–अध्याय 2 पृष्ठ क्रमांक 15, 22, 23; अध्याय 5 पृष्ठ क्रमांक 43, 47; अध्याय 5 पृष्ठ क्रमांक 63; अध्याय 6 पृष्ठ क्रमांक 77 आदि सभी अध्यायों में दैनिक जीवन संबंधी उदाहरण उपलब्ध हैं।

पाठ्यपुस्तक में अध्ययन के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है, के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक से अध्ययन कराने के लिए विशेष प्रशिक्षण इसलिए नहीं चाहिए क्योंकि इसमें विषयवस्तु की भाषा सरल होने के कारण समझाने में आसानी रहती है। अत: प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।

पाठ्यपुस्तक में सहायक पुस्तकों की सूची के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पाठ्यपुस्तक में सहायक सूची को शामिल नहीं किया है।

पाठ्यपुस्तक के मूल्य के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक को देखने पर यह पता चलता है कि जिस प्रकार की बाइंडिंग है तथा जैसा कागज़

पुस्तक का है उसके अनुरूप पुस्तक का मूल्य उचित है।

पाठ्यपुस्तक के बाह्य स्वरूप के आकर्षण के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक को देखने पर पता चलता है कि पुस्तक के बाह्य आवरण पर कोई विशेष चित्र नहीं दिया गया जिसके कारण पुस्तक का बाह्य स्वरूप आकर्षक बने। अत: यह प्रतिक्रिया प्राप्त हुई।

पाठ्यपुस्तक में तकनीकी एवं कठिन शब्दों के लिए अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का उपयोग के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह है कि पुस्तक में प्रत्येक शब्द कठिन हो या सरल, तकनीकी शब्दों के लिए अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग किया है। उदाहरण स्वरूप, कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) कोशिकांग (Cell Organells), अंत:प्रदव्यी जालिका (Endo Plasmic Reticulum), अवर्णी लवक (Leucoplast), हरित लवक (Chloroplast), (अध्याय 11 पृष्ठ 166,168), आवृत्त बीजी (Angiosperm), अनावृत्त बीजी (Gymnosperm) (अध्याय 12 पृष्ठ 191)। इनके अतिरिक्त भी पुस्तक में कई बार तकनीकी एवं कठिन शब्दों के लिए अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।

पाठ्यपुस्तक की सहायता से शिक्षकों को विषयवस्तु समझाने में आसानी के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक के प्रायोगिक कार्यों की सूची में जितने भी प्रायोगिक कार्य हैं उनसे संबंधित अध्याय पुस्तक में हैं। उदाहरण- मृदु और कठोर जल की पहचान करना, अध्याय-'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी' में मापन, द्रव्य प्रकृति एवं व्यवहार, स्टार्च, प्रोटीन, वसा परीक्षण करना; अध्याय- पोषण एवं स्वास्थ्य पृष्ठ क्रमांक 201। आर्कमिडीज के नियम का सत्यापन करना। अध्याय 3 'गति एवं बल' पृष्ठ क्रमांक 27, वर्नियर कैलीपर्स की सहायता से दी गई। वस्तु की वक्रता की त्रिज्या ज्ञात करना। अध्याय-'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी' में मापन, द्रव्य प्रकृति एवं व्यवहार। विभिन्न चार्ट, मॉडल और चित्रों की सहायता से मनुष्यों में होने वाले अल्पता रोगों का अध्ययन करना। अध्याय 13 'पोषण एवं स्वास्थ्य' पृष्ठ क्रमांक 201 पर दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अध्याय भी उपलब्ध हैं।

पाठ्यपुस्तक में गृहकार्य से संबंधित पक्ष के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि पुस्तक को देखने पर पता चलता है कि प्रत्येक अध्याय के मध्य में छात्रों को 'स्वयं उत्तर खोजिए' दिया गया है जो कि शिक्षक द्वारा अध्याय पढ़ाने के उपरांत विद्यार्थियों के लिए दिया जाता है जो लगभग सभी अध्यायों में उपलब्ध है।

पाठ्यपुस्तक में परीक्षा के लिए सुझाव के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसके संभावित कारण यह हैं कि संपूर्ण पुस्तक में कहीं भी परीक्षा से संबंधित कोई सुझाव नहीं दिया गया है। अत: यह प्रतिक्रिया प्राप्त हुई।

पाठ्यपुस्तक में विषयवस्तु पूर्व कक्षा से संबंधित होने पर सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि इनमें से कुछ

अध्याय 8वीं कक्षा में भी थे, जैसे–कोशिका की संरचना, ऊर्जा, कार्बन, जैव मॉडल आदि। अतः यह पूर्व कक्षा से संबंधित होना पायी गई, क्योंकि 'कार्य' अध्याय 4 ऊर्जा और शक्ति पृष्ठ क्रमांक 59, अध्याय 10 'रासायनिक आबंधन एवं अभिक्रिया' पृष्ठ क्रमांक 141, अध्याय 18 जैवमण्डल पृष्ठ क्रमांक 280। इसी प्रकार कुछ अध्याय उससे पूर्व की कक्षाओं से भी संबंधित हैं।

पाठ्यपुस्तक में प्रत्येक इकाई में 'परियोजना कार्य' तथा 'गतिविधि प्रश्न' पर सकारात्मक प्रतिक्रिया दी गई। इसका संभावित कारण यह है कि पुस्तक में प्रत्येक अध्याय में 'गतिविधि प्रश्न' तथा परियोजना कार्य दिए गए हैं। उदाहरणस्वरूप अध्याय 1, पृष्ठ क्रमांक 10 पर अनुसंधान के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाले किन्हीं तीन भारतीय वैज्ञानिकों का सचित्र जीवन परिचय दीजिए। अध्याय 4, अंतरिक्ष में जाने वाले भारतीय वैज्ञानिकों को सूचीबद्ध करिए एवं किसी एक का जीवन परिचय दीजिए। अध्याय 5, अपने आसपास पायी जाने वाली वस्तुओं पर बल लगाकर देखें। किस प्रकार का कार्य (धनात्मक, ऋणात्मक व शून्य) हुआ है। उसकी एक तालिका तैयार कीजिए।

विद्यार्थियों तथा शिक्षकों द्वारा पाठ्यपुस्तक में सुधार हेतु रंगीन चित्रों का संयोजन कागज़ की गुणवत्ता में सुधार, बाह्य स्वरूप आकर्षक बनाना, वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ दूर करना, शब्द सूची को शामिल करना, सहायक पुस्तकों की सूची देना, परीक्षा संबंधी सुझाव देने के सुझाव दिए गए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के निम्न मुख्य निष्कर्ष हैं, पाठ्यपुस्तक

(i) के प्रकाशकों की साख एवं लेखकगण योग्य पाए गए, (ii) की विषयवस्तु रुचिकर पायी गई, (iii) में अक्षरों का आकार उपयुक्त पाया गया, (iv) में चित्र पर्याप्त मात्रा में पाए गए, (v) में रंगीन चित्रों का संयोजन नहीं पाया गया, (vi) में कागज़ की गुणवत्ता निम्न कोटि की पायी गयी, (vii) में सहायक पुस्तकों की सूची नहीं पायी गयी, (viii) में परीक्षा से संबंधित सुझाव नहीं पाए गए, (ix) की विषयवस्तु में प्रामाणिकता पायी गयी, (x) विषयवस्तु समझने में आसान पायी गयी, (xi) में वाक्य छोटे-छोटे तथा भाषा सरल व स्पष्ट पायी गयी, (xii) में परियोजना कार्य तथा अभ्यास कार्य उचित मात्रा में पाया गया, (xiii) का बाह्य स्वरूप आकर्षक नहीं पाया गया, (xiv) में वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ पायी गयीं, (xv) से अध्यापन कराने में शिक्षकों को आसानी होती है, यह पाया गया, (xvi) में विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण क्रमबद्ध रूप से पाया गया, (xvii) में गतिविधि प्रश्न पाए गए, (xviii) में प्रयोगात्मक कार्यो से संबंधित अध्याय पाए गए, (xix) में विषयसूची पायी गयी, (xx) में तकनीकी एवं कठिन शब्दों के लिए अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का उपयोग करना पाया गया, (xxi) का मूल्य उचित पाया गया, (xxii) में पाठों का आकार विद्यार्थियों के अनुरूप नहीं पाया गया।

संदर्भ

अग्रवाल, एस.के. 1981. *शिक्षण कला* (शिक्षण एवं परीक्षण की प्रविधियाँ), राजेश पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

कोरी, धर्मेन्द्र कुमार. 2008. ''मध्य प्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा निर्धारित इतिहारस की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन (पूर्व माधयमिक स्तर के संदर्भ में)''. अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

टिल्लू, मीनाक्षी. 1970. ''मध्य प्रदेश शासन द्वारा निर्धारित मातृभाषा हिंदी की पाठ्यपुस्तकों का समीक्षात्मक अध्ययन कक्षा 1 से 5वीं के विशेष संदर्भ में. अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, इंदौर विश्वविद्यालय, इंदौर

तावड़े, मनीषा. 2006. ''राज्य संसाधन केंद्र मध्य प्रदेश द्वारा प्रकाशित साक्षरता की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन'', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

तोमर, अर्चना सिंह. 1993. ''मध्य प्रदेश, बिहार की राज्य संसाधन केंद्र द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों का तुलनात्मक अध्ययन'', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

पाटीदार, भरतलाल. 1993. ''सामाजिक अध्ययन आठवीं कक्षा की दो विभिन्न पाठ्यपुस्तकों में वर्णित सामाजिक पूर्वाग्रहों का पाठ्यक्रम विकास हेतु विश्लेषण एवं मूल्यांकन'', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

पाल, एच. आर. एवं पाल, आर. 2006. पाठ्यचर्या–कल आज और कल. शिप्रा प्रकाशन, नयी दिल्ली

पाल एवं वर्मा. 2013. ''मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र द्वारा निर्मित 9वीं कक्षा की विज्ञान विषय की पाठ्य.पुस्तक का विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मूल्यांकन'', *रचना*, 35–44

पाल, हंसराज, शर्मा, मंजुलता. 2009. *मापन, आकलन एवं मूल्यांकन.* शिप्रा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली

शर्मा, रश्मि. 2000. ''इंदौर शहर के निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों की निर्धारण प्रणाली का अध्ययन'', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

सिंह, उर्मिला. 1983. ''राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की पाठ्य सामग्री का मूल्यांकन'', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, इंदौर विश्वविद्यालय, इंदौर

हरदयाल, मोहन लाल. 1970. ''मॉरिशस की 6ठी कक्षा की हिंदी की पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन'', अप्रकाशित एम.एड. शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

Buch, M.B. 1974. (Ed.). *A Survey of Research in Education.* Baroda, Centre of Advanced Study in Education

_____ .1979. *Second Survey of Research in Education* (1972-1978). Baroda, Soceity for Educational Research and Development

_____. 1986. *Third Survey of Research in Education* (1978-1983). National Council Educational Research and Training, New Delhi

_____. 1991. *Fourth Survey of Research in Education* (1983-1988). Vol. I and II. *National Council of Educational Research and Training,* New Delhi

Gagneja, A.C. 1974. *The Treatment of America, England, Russia, Japan, China and Pakistan in Social Studies, History and Geography Textbook for High/Higher Secondary School* Indore University, Indore

NCERT. 2006. *Fifth Survey of Educational Research in Education* (1993-2000) Vol. I and II. National Council of Educational Research and Training, New Delhi

_____ 2006. *Sixth Survey of Educational Research* (1993-2000). Vol. I, NCERT, New Delhi

_____. 2007. *Sixth Survey of Educational Research* (1993-2000), Vol. II. NCERT, New Delhi

Pattabhiram, G. 1973. *An Evaluation of Nationalized Textbooks for Higher Classes in Social Studies in Secondary School of Andhra Pradesh.* Unpublished Ph.D., M.S. University, Baroda

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा संचालित विद्यालयों का समीक्षात्मक अध्ययन–उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जिले के संदर्भ में

राजेश कुमार श्रीवास्तव*

हर साल भारत में शिक्षक दिवस मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक स्कूल में नेताओं द्वारा भाषण दिया जाता है कि गुरु का स्थान भगवान से भी पहले आता है। लेकिन उस गुरु की दशा पर कोई भी नेता ध्यान नहीं देता है। वह उनकी दीन-दशा के बारे में जानते हुए भी लंबा-चौड़ा भाषण देता है। इस दिन अध्यापकों की स्थिति में परिवर्तन लाने वाली किसी नीति या कार्यक्रम की घोषणा भी नहीं की जाती है। इस अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जिले के केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा मान्यता-प्राप्त स्कूलों की दशा का समीक्षात्मक अवलोकन किया गया है। इन स्कूलों की ओर सरकार का ध्यान नहीं जा रहा है जो शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 को सही संदर्भ में लागू नहीं कर रहे हैं।

प्रस्तावना

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का विकास कई वर्षो के लंबे प्रयास का प्रतिफल है। उत्तर प्रदेश बोर्ड ऑफ़ हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट एजुकेशन का गठन सन् 1921 में हुआ, जिसका अधिकार क्षेत्र राजपूताना, मध्य भारत और ग्वालियर था। संयुक्त प्रांतों की सरकारों के प्रतिनिधित्व के फलस्वरूप भारत सरकार ने सन् 1929 में सभी क्षेत्रों के लिए संयुक्त बोर्ड गठन करने की सलाह दी, जिसका नाम बोर्ड ऑफ़ हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट एजुकेशन, राजपूताना रखा गया। इस बोर्ड में अजमेर, मेरवाड़, मध्य भारत और ग्वालियर के क्षेत्र शामिल थे।

बोर्ड माध्यमिक शिक्षा के विकास व विस्तार का साक्षी था। इसके साथ ही बोर्ड ने माध्यमिक शिक्षा के स्तर एवं गुणवत्ता का ध्यान रखा। लेकिन

* *प्रवक्ता* (बी.एड. संकाय), श्री वंशी बाल गोपाल महाविद्यालय, सगरा-राजूपुर, पोस्ट सम्मनपुर, जिला-गाज़ीपुर, (उ.प्र)

जैसे ही राज्य विश्वविद्यालयों और राज्य बोर्डों का गठन देश के सभी कोने में होने लगा, बोर्ड ऑफ़ हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट बोर्ड, अजमेर व भोपाल तक ही सीमित रहा तथा बाद में विंध्य प्रदेशों तक फैल गया। इसी के परिणामस्वरूप संविधान ने सन् 1952 ई. में बोर्ड के अधिनियमों में सुधार किये, जिसमें बोर्ड को क्षेत्र पार्ट-सी और पार्ट-डी तक सीमित रखा गया तथा बोर्ड का वर्तमान नाम केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड रखा गया। सन् 1962 में बोर्ड का दोबारा गठन किया गया। इसके मुख्य उद्देश्य थे –

- शिक्षण संस्थानों को प्रभावशाली ढंग से संचालित करना।
- उन छात्रों की शिक्षा की ज़िम्मेदारी लेना, जिनके अभिभावक केंद्र सरकार की विभिन्न सेवाओं में सेवारत् हैं और जिनका सेवा में अधिकतर स्थानांतरण होता है।

बोर्ड का अधिकार क्षेत्र

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का विस्तार व फैलाव राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर भी है। सन् 1962 ई. में बोर्ड गठन के परिणामस्वरूप, दिल्ली माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का विलय केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड में हो गया। इस प्रकार दिल्ली बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त सभी शिक्षण संस्थान केंद्रीय बोर्ड के भाग हो गये। इसके बाद सभी केंद्र शासित प्रदेश जैसे चंडीगढ़, अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह, अरूणाचल प्रदेश व सिक्किम में स्थित विद्यालय केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली के द्वारा संचालित स्कूल हो गये। वर्तमान में झारखंड, उत्तरांचल और छत्तीसगढ़ राज्यों ने भी केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से मान्यताप्राप्त कर ली। सन् 1962 में बोर्ड के मान्यताप्राप्त स्कूलों की संख्या 309 थी जो मार्च 2007 तक यह संख्या बढ़कर 8979 हो गई। बोर्ड के 141 स्कूल देश के बाहर स्थित हैं। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त 897 केंद्रीय विद्यालय, 1761 सरकारी विद्यालय, 5827 स्वतंत्र विद्यालय, 480 जवाहर नवोदय विद्यालय तथा 14 केंद्रीय तिब्बती विद्यालय हैं।

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त संचालित स्कूलों के प्रभावशाली क्रियान्वयन व सफल संचालन हेतु बोर्ड ने क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना देश के विभिन्न भागों में की है। बोर्ड के क्षेत्रीय कार्यालय इलाहाबाद, अजमेर, चेन्नयी, गुवाहाटी, पंचकुला और दिल्ली में हैं। देश के बाहर स्थित स्कूलों की देख-रेख दिल्ली कार्यालय करता है। क्षेत्रीय कार्यालयों के क्रियाकलापों व देख-रेख की ज़िम्मेदारी मुख्यालय की है। यद्यपि क्षेत्रीय कार्यालयों को प्र्याप्त अधिकार दिये गये हैं। नीति-निर्धारण जैसे मुद्दों को मुख्यालय को सौंपा जाता है। प्रशासन, स्कूल अंत:क्रिया, परीक्षा संबंधी प्रबंधन व रोज़मर्रा के क्रियाकलाप क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा निपटाए जाते हैं।

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, स्ववित्तपोषित संस्था है, जो केंद्र सरकार की सहायता के बिना अपने खर्चों का स्वयं निर्वहन करती है। बोर्ड अपनी आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वार्षिक परीक्षा फ़ीस, मान्यता फ़ीस, पी.एम.टी. प्रवेश फ़ीस, इंजीनियरिंग प्रवेश परीक्षा फ़ीस तथा बोर्ड द्वारा प्रकाशित पुस्तकें व जर्नल आदि का प्रयोग करता है।

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना के मुख्य उद्देश्य हैं –

- परीक्षाओं का निर्धारण करना और दसवीं तथा बारहवीं परीक्षाओं के बाद सरकारी परीक्षाओं का संचालन करवाना। मान्यताप्राप्त सी.बी.एस.ई. विद्यालयों के प्रमाण-पत्रों का विस्तारण करना।
- उन शिक्षार्थियों की ज़रूरतों को पूरा करवाना जिनके अभिभावकों का नौकरियों में स्थानांतरण अधिक होता है।
- परीक्षाओं के पाठयक्रमों का समय-समय पर नवीनीकरण करना।
- परीक्षा हेतु संस्थानों को मान्यता देना और देश की शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाना।

बोर्ड के सर्वोत्तम केंद्र बिंदु निम्नवत् हैं-

- शिक्षण–अधिगम प्रविधियों में नयी तकनीकों का समायोजन, छात्र-मित्र कार्यक्रम द्वारा करना और छात्र केंद्रित प्रतिरूप के द्वारा करना।
- परीक्षाओं के मूल्यांकन में सुधार।
- नौकरी केंद्रित प्रतिभाओं का विकास व व्यवस्थापन करवाना।
- अध्यापकों व प्रशासकों की शिक्षण प्रतिभाओं को नियमित तौर पर वर्कशॉप, प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि के माध्यम से अद्यतन करना।

अध्ययन की आवश्यकता

शोधकर्ता स्वयं सन् 1996 से प्राइवेट सीबीएसई विद्यालयों में पढ़ा रहा था। कभी-कभी मौका मिलने पर वर्तमान समय में भी इनकी कार्यशैली को स्वयं जाकर आकलन करने की कोशिश करता है। कुछ कार्यप्रणालियों के बारे में अन्य अध्यापकों से अंत:क्रिया के द्वारा शोधकर्ता को पता चला है कि इन स्कूलों द्वारा तरह-तरह से अध्यापकों, छात्रों व अभिभावकों का उत्पीड़न किया जाता है। इसके साथ ही शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 पास किया गया, जिसमें हरेक छात्र/छात्रा को शिक्षा देने की बात की गयी। लेकिन शिक्षा देने के नाम पर इन मान्यताप्राप्त विद्यालयों का खेल धनउगाही हेतु किया जा रहा है जो शिक्षा के अधिकार अधिनियम-2009 की पोल खोल रहा है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम में जाति के आधार पर 25 प्रतिशत आरक्षण देने की बात कही गयी है। लेकिन यह आरक्षण इतने आंदोलनों के बाद भी दिखाई नहीं पड़ता है। इन सभी को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने इस विषय का चयन किया।

शोध शीर्षक

''केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा संचालित विद्यालयों का समीक्षात्मक अध्ययन-उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जिले के संदर्भ में।''

अध्यापक शिक्षा का उद्देश्य

वर्तमान परिदृश्य में अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित विद्यालयों के प्रबंधकों की शिक्षा के संबंध में अध्ययन करना।
- सी.बी.एस.ई. विद्यालयों द्वारा समाज के विभिन्न वर्ग द्वारा किये गये आर्थिक उत्पीड़न का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
- सी.बी.एस.ई. विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की प्रशिक्षण, कार्यशैली, वेतन आदि का आलोचनात्मक अध्ययन करना।
- सी.बी.एस.ई. विद्यालयों द्वारा अध्यापकों को

दी जा रही सुविधाओं जैसे–ई.पी.एफ., वेतन, मेडिकल आदि का समीक्षात्मक अध्ययन करना।

- सी.बी.एस.ई. द्वारा दसवीं कक्षा को गृह–परीक्षा दिये जाने के कारण होने वाले नुकसान का आलोचनात्मक अध्ययन करना।
- सी.बी.एस.ई. द्वारा मान्यताप्राप्त विद्यालयों में अध्यापकों के कार्य–सुधार के लिए चलायी जा रहीं वर्कशॉप, ओरिएंटेशन कक्षाएँ आदि का अध्ययन करना।

शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन अवलोकन व साक्षात्कार के आधार पर किया गया है। अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर जिले के ग्यारह मान्यताप्राप्त सी.बी.एस.ई. स्कूलों के अध्यापकों तथा अभिभावकों को न्यादर्श हेतु चुना गया। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित स्कूलों की कार्यशैली पर गहन चिंतन व आलोचनात्मक समीक्षा की गयी।

सी.बी.एस.ई. विद्यालयों द्वारा दी जा रही शिक्षा के संबंध में संपूर्ण अवलोकन व साक्षात्कार का गहन अध्ययन कर शिक्षा संबंधी विचारों पर चिंतन और चिंतन की आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की। सी.बी.एस.ई. द्वारा मान्यताप्राप्त विद्यालयों द्वारा किये गये सामाजिक शोषण आज की ज्वलंत समस्याओं में से एक है जिसका हल ढूँढा जाना अत्यंत आवश्वक है।

न्यादर्श के लिए चयनित गाज़ीपुर जिले के स्कूलों का विवरण

1.	सनबीम स्कूल, महाराजगंज, गाज़ीपुर
2.	शाह फैज़ स्कूल, गाज़ीपुर
3.	तूलिका स्कूल, गाज़ीपुर
4.	एम.जे.आर.पी. स्कूल, गाज़ीपुर
5.	माधाव सरस्वती स्कूल, गाज़ीपुर
6.	गौरी शिक्षा निकेतन स्कूल, गाज़ीपुर
7.	क्रिसेन्ट कांवेंट स्कूल, दिलदारनगर, गाज़ीपुर
8.	राज पब्लिक स्कूल, गाज़ीपुर
9.	सेंट्रल पब्लिक स्कूल, जमानिया, गाज़ीपुर
10.	सन शाइन पब्लिक स्कूल, जमानिया, गाज़ीपुर
11.	सन फ्लावर स्कूल, नन्दगंज गाज़ीपुर

मुख्य परिणाम

1. केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा संचालित स्कूलों के प्रबंधकों की शिक्षा के संबंध में यह पाया गया कि 90 प्रतिशत संचालक शिक्षित हैं, लेकिन उनके अंदर शैक्षिक आदर्श की कमी है। उन्हें सिर्फ इतना पता है कि वे एक पूँजीपति हैं, जिसमें उन्हें अधिक से अधिक धनउगाही करनी है।
2. केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा संचालित विद्यालयों के प्रबंधकों द्वारा प्रत्येक सत्र में फ़ीस बढ़ाई जाती है। इन्हें पता है कि रुपये का अवमूल्यन हो रहा है, जिसके कारण छात्रों की फ़ीस में बढ़ोत्तरी करना आवश्यक है। लेकिन अध्यापकों के वेतन की बढ़ोत्तरी पर इनका ध्यान नहीं जाता है। शिक्षकों को वेतन के नाम में प्रति माह दो हज़ार से दस हज़ार रुपये तक

ही दिये जाते हैं। प्रबंधकों द्वारा वेतन का भुगतान प्रत्येक महीने 10 या 15 तारीख को होता है। यह वेतन भुगतान 10 या 15 तारीख को इसलिए किया जाता है कि अगर अध्यापक विद्यालय की नौकरी छोड़कर किसी दूसरे विद्यालय में जाता है तो उसका आधा महीने का वेतन इनके द्वारा न दिया जाये। कहीं-कहीं तो एक महीने का अग्रिम वेतन जमा के तौर पर विद्यालय में रखा जाता हैं ताकि शिक्षक आसानी से कार्यमुक्त होकर दूसरे विद्यालय में न जा सके।

शिक्षकों को 14 दिन की आकस्मिक छुट्टी का प्रावधान है। लेकिन इस छुट्टी के लिए शिक्षक को प्राचार्य/प्रबंधक के विशेष अनुमति की ज़रूरत होती है, जो शायद ही शिक्षक को आसानी से मिल पाती है। शिक्षक यदि किसी कारणवश बिना अनुमति के छुट्टी लेकर जाता है तब उसका एक दिन के बजाय दो दिन का वेतन काट लिया जाता है। यह व्यवस्था प्रतिष्ठित मान्यताप्राप्त स्कूलों जैसे- सनबीम ग्रुप ऑफ़ इंस्टीट्यूट्स में है, जिसके लगभग 20 से अधिक विद्यालय पूरे उत्तर प्रदेश में चलते हैं। इस छुट्टी का नाम एल-2 संस्था द्वारा दिया गया है।

यहाँ तथा अन्य स्कूलों में भी एक दिन की छुट्टी के बजाय चार दिन का वेतन काटा जाता है, जिसे एल-4 नाम दिया गया है। शिक्षक से छुट्टी के समय का पूरा काम करना पड़ता है, वह भी बिना वेतन के। अगर अध्यापक बिना आज्ञा के 15 दिन की छुट्टी पर चला जाता है तो उसका उस महीने का वेतन ही नहीं बनता है। ये विद्यालय शोषण के विरुद्ध अधिकार का अर्थ भी नहीं जानते और अपने-अपने अनोखे तरीके से शोषण करते हैं। इन संस्थानों को आर्टिकल 23 तथा 24 में शामिल शोषण के विरुद्ध अधिकार का भी ज्ञान नहीं है। प्रत्येक सत्र में फ़ीस बढ़ोत्तरी व ड्रेस बदलने का मामला, किताब बदलने का मामला आदि जिलाधिकारी के पास पहुँचता है, साथ-साथ अखबारों द्वारा भी प्रकाशित होता है। आखिरकार बिना किसी कार्यवाही के अधिकारी विवश होकर इस मामले को ठंडे बस्ते में डाल देते हैं।

3. केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली द्वारा मान्यताप्राप्त विद्यालयों का वेतन भुगतान पंजिका तथा अध्यापक उपस्थिति पंजिका अलग-अलग हैं। वेतन भुगतान पंजिका सी.बी.एस.ई. बोर्ड को दिखाने के लिए अलग है, इसमें सी.बी.एस.ई. मानक के हिसाब से वेतन दिखाया जाता है, लेकिन वास्तविक तौर पर इनके व्यक्तिगत वेतन पंजिका में दो हज़ार से चार हज़ार तक के वेतन का भुगतान किया जाता है। अध्यापक उपस्थिति पंजिका पर भी कुछ इसी तरह का खेल होता है। सी.बी.एस.ई. बोर्ड भेजने के लिए अलग शिक्षक उपस्थिति पंजिका तथा वास्तव में शोषण के लिए बनाए गए अर्थात् रोज अध्यापक को बदले गए/निकाले गए, के लिए अलग अध्यापक उपस्थिति पंजिका। अर्थात् 'हाथी के दाँत दिखाने के कुछ और खाने के कुछ और'।

4. सी.बी.एस.ई. विद्यालयों के 90 प्रतिशत विद्यालयों में प्रवेश ले चुके छात्रों से प्रत्येक सत्र में पुनः प्रवेश के नाम पर लाखों रुपये वसूले जाते हैं, अर्थात् इन स्कूलों में प्रत्येक वर्ष प्रवेश शुल्क वसूला जाता है। प्रबंधकों को इतना पता नहीं कि किसी भी संस्था में प्रवेश एक बार होता है तथा प्रवेश-शुल्क भी सिर्फ एक बार लिया जाता है, लेकिन इनके द्वारा हर एक सत्र में प्रवेश-शुल्क लिया जाना सरासर मनमानी और आर्थिक शोषण है।
5. सी.बी.एस.ई. विद्यालयों में किन्डरगार्डन, नर्सरी, एल.के.जी., यू.के.जी. कक्षाओं का संचालन होता है, जिसकी फ़ीस भी प्रतिमाह चार सौ से छः सौ रुपये तक ली जाती है और दसवीं-बारहवीं पास शिक्षिकाओं को पंद्रह सौ से दो हज़ार रुपया प्रति माह वेतन देकर पढ़वाया जाता है। इन कक्षाओं द्वारा समाज का आर्थिक शोषण इन विद्यालयों द्वारा खूब होता है।
6. सी.बी.एस.ई. के 90 प्रतिशत विद्यालयों में अभिभावकों द्वारा किसी कारणवश फ़ीस विलंब से जमा करने पर ऐसे छात्रों को कक्षा से बाहर किसी खाली कक्ष में बिना अध्यापक के बैठा दिया जाता है, जो शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 की पोल उजागर करता है। अभिभावकों को यह पता होता है कि छात्र स्कूल गया है, कक्षा में पढ़ रहा होगा लेकिन अभिभावक को क्या पता कि एक-दो दिन विलंब से फ़ीस जमा होने के कारण उनका छात्र/छात्रा कक्षा से बाहर कहीं अकेले में स्कूल की परिधि में बैठा है। फ़ीस विलंब से जमा करवाने पर विलंब शुल्क भी अभिभावकों से 50 से 100 रुपये तक लिये जाते हैं। कुछ विद्यालयों द्वारा छात्रों को स्कूल में विलंब से पहुँचने के कारण विलंब-शुल्क लिया जाता है।
7. कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 के प्रावधान के अनुसार किसी संस्था में 20 या 20 से अधिक कर्मचारी होने पर कर्मचारी भविष्य निधि उस संस्था पर लागू होगी जिसमें कर्मचारी की सकल आय का 12 प्रतिशत हिस्सा कर्मचारी को अपने ई.पी.एफ. खाते में तथा शेष 12 प्रतिशत हिस्सा संस्था द्वारा कर्मचारी के ई.पी.एफ. खाते में भुगतान करना होता है। इस प्रकार निजी संस्था के कर्मचारी को 12 प्रतिशत सहायता संस्था से तथा सरकार द्वारा जमा राशि पर ब्याज दर कर्मचारी को नौकरी छोड़ने पर प्राप्त होती है। इसमें पेंशन स्कीम भी कर्मचारी के भविष्य के फायदे हेतु होती है। लेकिन सी.बी.एस.ई. विद्यालयों द्वारा शिक्षकों व कर्मचारियों की भविष्य निधि पर भी बड़ा खेल होता है। कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के तहत वेतन का 12 प्रतिशत भुगतान संस्था का कर्मचारी करेगा तथा 12 प्रतिशत भुगतान संस्था करेगी लेकिन इन प्रबंधकों द्वारा सभी कर्मचारियों पर यह व्यवस्था लागू नहीं की है और जिन पर लागू भी की है तो वे कर्मचारी के वेतन से 24 प्रतिशत कटवाकर यह व्यवस्था लागू रखी है। अर्थात् स्कूल की सहभागिता भी अध्यापक के वेतन से काटा जाता है।

8. सी.बी.एस.ई. के 99 प्रतिशत विद्यालयों में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) की किताबों को पाठ्यक्रम के रूप में नहीं लगाया जाता है। इन किताबों पर विद्यालयों को कमीशन प्राप्त नहीं होता है। इसीलिए ये विद्यालय गैर–सरकारी प्रकाशकों द्वारा मुद्रित किताबों को विद्यालयों में पाठ्यक्रम के रूप में लगवाते हैं, ताकि इनको मोटा कमीशन मिल जाये।
9. सी.बी.एस.ई. द्वारा मान्यताप्राप्त 70 प्रतिशत स्कूलों में खेल व पुस्तकालय घंटी/अवधि का प्रयोग होता है लेकिन पाठ्यक्रम अपूर्ण होने की दशा में इस घंटी/अवधि को पाठ्यक्रम पूरा होने में प्रयोग किया जाता है।
10. इन स्कूलों की फीस हर एक सत्र में बढ़ाई जाती है, जिसके कारण अभिभावकों को मानसिक दबाव से गुज़रना पड़ता है। इन स्कूलों द्वारा प्रति माह 1200 से 2000 रुपये तक की फ़ीस वसूली जाती है जो शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 का उल्लंघन है।
11. सी.बी.एस.ई. स्कूलों में 50 प्रतिशत अध्यापक अप्रशिक्षित और 50 प्रतिशत अध्यापक प्रशिक्षित पाये गए। अप्रशिक्षित अध्यापक इन स्कूलों को सस्ते वेतन में उपलब्ध हो जाते हैं।
12. सी.बी.एस.ई. स्कूलों के प्रबंधकों/प्राचार्यो द्वारा प्रचार–प्रसार के नाम पर आकर्षित विज्ञापन जैसे प्रशिक्षित अध्यापक, कक्षा–कक्ष में ए.सी. की व्यवस्था, खेल का मैदान, कक्षा–कक्ष में कंप्यूटर, स्वीमिंग पूल आदि अभिभावकों को गुमराह करने की नीयत से दिखाये जाते हैं, लेकिन ज़मीनी स्तर पर इनके विज्ञापन की 50 प्रतिशत बातें झूठी पायी जाती हैं।
13. सी.बी.एस.ई. द्वारा हाई स्कूल को गृह परीक्षा किये जाने के कारण शिक्षा माफ़ियाओं की वृद्धि हुई है। दसवीं कक्षा में परीक्षाओं के नाम पर एफ़–ए. 1, एफ़.ए.–2, एस.ए. –1, एस.ए.–2 आदि को स्कूल पंजिका व कंप्यूटर में चढ़ाकर सभी स्कूलों की परीक्षा में 100 प्रतिशत परीक्षाफल घोषित कर दिया जाता है। दसवीं कक्षा को गृह–परीक्षा किये जाने का प्रभाव ज़रूर कहीं न कहीं अवश्य पड़ा है। इन्हीं स्कूलों के दसवीं कक्षा के छात्रों का बारहवीं कक्षा में जाने पर, इनका परीक्षा परिणाम 3 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गृह–परीक्षा व सी.बी.एस.ई. बोर्ड द्वारा करायी गई परीक्षा में कितना अंतर है, जो कहीं न कहीं शिक्षा माफियाओं को दसवीं की सी.बी.एस.ई. का प्रमाणपत्र आसानी से उपलब्ध कराने में गृह–परीक्षा मददगार साबित हुई है।
14. सी.बी.एस.ई. के 99 प्रतिशत स्कूलों द्वारा अध्यापकों के कक्षा कक्ष में बेहतर प्रदर्शन करने हेतु ऑरिएंटेशन कक्षाएँ, वर्कशॉप आदि नहीं करवाये जाते हैं, जिससे शिक्षक अपने शिक्षण क्षेत्र में अच्छा कर सकें।
15. मान्यता है कि कोई भी नवीन कार्य प्रारंभ करने से पहले ईश्वर की वंदना अवश्य की जाती है, लेकिन इन सी.बी.एस.ई. स्कूलों द्वारा परीक्षा/टेस्ट के समय प्रार्थना ही नहीं करवायी जाती है। प्रार्थना से छात्रों

में विभिन्न मूल्यों का विकास होता है। ये स्कूल भारतीय संस्कृति से हमारे छात्रों को विमुख करके कहीं न कहीं पाश्चात्य संस्कृति का बीज बोने का काम अवश्य कर रहे हैं।

16. सी.बी.एस.ई. छात्रों का बैग-भार बढ़ रहा है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा है लेकिन छात्रों के बैग के भार को कम करने की दिशा में बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया जाता।
17. सी.बी.एस.ई. स्कूलों द्वारा एक शिक्षक को 7 पीरियड दिये जाते हैं, जिसमें उसे कक्षा में खड़ा होकर पढ़ाना पड़ता है, यह अच्छा भी है, इससे अध्यापकों की छात्रों पर निगाह रहती है। कहीं-कहीं तो कक्षा में टेबल रखा जाता है, ताकि अध्यापक चॉक, डस्टर व अन्य शिक्षण उपकरण उस पर रख सके, लेकिन 50 प्रतिशत स्कूलों की कक्षाओं में टेबल व कुर्सी कुछ भी नहीं होतीं। यह इसलिए किया जाता है ताकि शिक्षक कक्षा में बैठ न जाये। यह सब देखकर छात्र भी स्कूल के व्यवहार से स्तब्ध रह जाते हैं और वे अध्यापक को सहानुभूतिपूर्ण तरीके से देखते हैं।
18. एक-दो मान्यताप्राप्त स्कूलों में यह पाया गया कि शिक्षकों व छात्रों को अपनी बाइक व साइकिल आदि रखने हेतु 500 रुपये प्रति माह चुकाने पड़ते हैं। इस प्रकार छात्रों के साथ-साथ अध्यापकों का भी शोषण होता है।
19. 80 प्रतिशत सी.बी.एस.ई. मान्यताप्राप्त स्कूलों द्वारा अमान्यताप्राप्त स्कूलों के छात्रों को दसवीं तथा बारहवीं कक्षा का फॉर्म भरवाकर परीक्षाएँ करवाई जाती हैं। इससे स्कूलों को मोटी रकम प्राप्त होती है।
20. 99 प्रतिशत स्कूलों में कार्य के प्रति उपयुक्त वातावरण, नौकरी के प्रति असुरक्षा का भाव, आर्थिक असुरक्षा, मेडिकल की सुविधाओं का अभाव, मेडिकल छुट्टी का न होना आदि असुरक्षा का माहौल उन्हें आए दिन तिल-तिल कर मार रहा है।
21. स्कूल एक गैर-लाभकारी संस्था है। लेकिन यही संस्थाएँ पूँजीपतियों को पैदा कर रही हैं। इन संस्थाओं के ऊपर आयकर भी नहीं लगाया जाता है चूँकि ये समाज को ऊपर उठाने में अपना सक्रिय योगदान देती हैं। अगर इन संस्थानों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाये तो यह पाया जायेगा कि एक आयकर जमा करने वाला व्यक्ति वह सभी सुख-सुविधाओं की वस्तु, जैसे–वाहन, महँगे इलैक्ट्रॉनिक उपकरण आदि अपनी पूरी नौकरी में नहीं पा सकता जितना कि इन संस्थानों के मालिक सिर्फ़ एक या दो वर्षों में प्राप्त कर लेते हैं।

निष्कर्ष

लेखक ने लोगों से वार्ता के दौरान सुना कि पब्लिक स्कूलों में आमदनी/कमाई अच्छी है क्यों न पब्लिक स्कूल खोल दिया जाये, जिसमें 1000 से 2000 रुपये प्रतिमाह तक तनख्वाह लेने वाले अध्यापक/अध्यापिकाएँ मिल जाएँगी। चूँकि हमारे देश में इतनी बेरोज़गारी है कि इससे ज़्यादा नहीं देना पड़ेगा। इस तरह के विचार इन संचालकों के मन में न उपजें, इसके लिए

सी.बी.एस.ई. को इन स्कूलों पर लगाम लगानी चाहिए। सी.बी.एस.ई. स्कूलों में इसी प्रकार शिक्षकों का शोषण हुआ तो आने वाले समय में ये स्कूल भी अपनी साख खो देंगे। सी.बी.एस.ई. बोर्ड का कार्य सिर्फ़ विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना मात्र ही न होकर, समय-समय पर आकस्मिक निरीक्षण कर इनकी कार्य प्रणाली में सुधार करवाना भी होना चाहिए। जिससे समाज के सभी वर्गो का शोषण बंद हो सके। इन स्कूलों पर सी.बी.एस.ई. बोर्ड द्वारा फ़ीस बढ़ोतरी, एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा संचालित किताबों का प्रयोग, अध्यापकों के हितों की जाँच, नैक ग्रेडिंग भी की जानी चाहिए तथा ई.पी.एफ. का सख्ती से अनुपालन कराने के लिए उचित निर्देश दिये जाने चाहिए। जिससे कि समाज के सभी वर्गों का उत्पीड़न बंद हो सके तथा आर्टिकल 21ए, आर्टिकल्स 23 तथा 24 का उल्लंघन बंद हो।

संदर्भ

कपिल, एच. के. 2001. *अनुसंधान विधियाँ, एकादश संस्करण.* एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा-282 004

पूर्व निदेशक (5 सितंबर 2013) एन.सी.ई.आर.टी., ''शिक्षक दिवस की सार्थकता'', *दैनिक जागरण,* पृ.10

त्रिपाठी, टी.पी. व त्रिपाठी, एन.एम. 2008. एन इंट्रोडक्शन ऑफ़ द स्टडी ऑफ़ ह्यूमन राइट्स (प्रथम संस्करण), इलाहाबाद लॉ एजेंसी पब्लिकेशंस, लॉ पब्लिशर्स, इलाहाबाद

www.CBSE.nic.in

www.epf india.gov.in/epf act 1952.pdf

www.mhrd.gov.in/rte

देश में उच्च शिक्षा का मात्रात्मक, गुणात्मक विकास एवं निजीकरण

राजेश कुमार जसवाल*

आज पूरे विश्व में, आर्थिक विकास में ज्ञान के संसाधनों की प्रभुसत्ता भौतिक संसाधनों की तुलना में बढ़ती जा रही है। ऐसे में उच्च शिक्षा और उच्च शिक्षण संस्थानों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। बाज़ार और समाज, परिवर्तन की अभिव्यक्ति के अच्छे सूचक हैं। इनसे संकेतों को ग्रहण कर विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को अपने पाठ्यक्रमों, अध्यापकों के पढ़ने-पढ़ाने के तौर-तरीकों, उच्च शिक्षण संस्थानों में घटते शैक्षणिक दिवसों को बढ़ाने, शोधकार्यों को बढ़ावा देने के साथ-साथ वर्तमान परीक्षा पद्धति में ऐसा बदलाव लाना होगा, जो वर्तमान ज़रूरतों के अनुसार समाज की आवश्यकताओं को आत्मसात् करने की क्षमता रखता हो। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो भारतीय समाज व औद्योगिक तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वर्तमान ज़रूरतों के अनुसार न तो हम शिक्षा का ढाँचा खड़ा कर पाएँगे, न ही हमारी उच्च शिक्षा देश व दुनिया की बदलती ज़रूरतों के साथ-साथ भारतीय परिवेश तथा यहाँ की परंपरा व संस्कृति के अनुकूल ही रह पाएगी। ऐसे में दुनिया की इन बदलती ज़रूरतों को, हमारी उच्च शिक्षा को समझना होगा, अन्यथा हमारा समाज ज्ञान की इस सदी में पिछड़ जाएगा। भले ही आज हमारे देश का उच्च शिक्षा का ढाँचा दुनिया में सबसे बड़ा हो, लेकिन आज भी बहुत बड़ी आबादी जहाँ उच्च शिक्षा से वंचित है तो वहीं गुणवत्ता की कसौटी पर अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। देश में 2020 तक उच्च शिक्षा की नामांकर दर को 30 फीसदी तक पहुँचाने के लिए जहाँ हमें ज़्यादा उच्च शिक्षण संस्थान खोलने होंगे, वहीं इनकी पहुंच समाज के पिछड़े, आदवासी व गरीब तबके तक पहुँचाने की भी चुनौती है। परंतु यह सब उच्च शिक्षा में गुणवत्ता से समझौता किये बगैर नहीं हो सकता। ऐसे में जहाँ हमें उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी भागीदारी को स्वीकार करना होगा तो वहीं निजी शिक्षण संस्थानों को भी अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वहन ईमानदारी से करना होगा। अन्यथा हमारी उच्च शिक्षा का ढाँचा जहाँ दुनिया के उंनत देशों के मुकाबले पिछड़ जाएगा तो वहीं देश का सामाजिक-आर्थिक उत्थान भी संभव नहीं हो पाएगा।

* *सहायक लोक संपर्क अधिकारी,* पांवटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.)

उच्च शिक्षा किसी भी देश के आर्थिक विकास तथा सुसंस्कृत समाज की स्थापना का आधारभूत बिंदु होती है। कोई भी राष्ट्र जो विश्व में अपनी अलग पहचान बनाना चाहते हैं व अन्य देशों के विकास के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहते हैं, उनके पास शिक्षा पर निवेश करने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं है। भारत वर्ष में भी लंबे समय से शिक्षा एक सामाजिक तथा लोकहितकारी सेवा के रूप में जानी जाती रही है। यहाँ उच्च शिक्षा के जो प्रारंभिक प्रयास हुए, उनमें धनी व संपन्न लोगों ने भूमि, भवन तथा धन के द्वारा अपना भरपूर सहयोग दिया। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय इसका ज्वलंत उदाहरण है। भारत देश की उच्च शिक्षा की गौरवशाली परंपरा में तक्षशिला, नालंदा तथा विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों का नाम जुड़ा हुआ है, जहाँ पूरे विश्व के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आया करते थे।[1]

पिछली सदी में जहाँ उच्च शिक्षा का केंद्र बिंदु समाज के भौतिक संसाधनों की वृद्धि रहा तो वहीं इस सदी में बदलते परिवेश में उच्च शिक्षा का केंद्र बिंदु *ज्ञान और सूचना* पर आधारित समाज हो गया है।[2] पूरे विश्व में आर्थिक विकास में ज्ञान के संसाधनों की प्रभुसत्ता भौतिक संसाधनों की तुलना में बढ़ती जा रही है। ऐसे में उच्च शिक्षा और उच्च शिक्षण संस्थानों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आज हमें तेज़ी से बदलती दुनिया के साथ चलने में एक निश्चित स्तर की क्षमता चाहिए। बाज़ार और समाज, परिवर्तन की अभिव्यक्ति के अच्छे सूचक हैं। इनसे संकेतों को ग्रहण कर विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों को अपने पाठ्यक्रमों व्याख्याताओं को पढ़ने-पढ़ाने के तरीकों और परीक्षा पद्धतियों में ऐसा बदलाव लाना होगा, जो परिवर्तन को हमारी आवश्यकतानुसार आत्मसात् करने की क्षमता रखता हो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विदेशी विश्वविद्यालयों, औद्योगिक घरानों व बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वर्तमान ज़रूरतों के अनुसार न तो हम शिक्षा का ढांचा खड़ा कर पाएँगें न ही हमारी उच्च शिक्षा भारतीय परिवेश तथा यहाँ की परंपरा व संस्कृति के अनुकूल ही रह पाएगी। दुनिया की इन बदलती ज़रूरतों को हमारी उच्च शिक्षा को समझना होगा अन्यथा हमारा समाज पिछडकर रह जाएगा।[3]

देश में उच्च शिक्षा का मात्रात्मक आयाम कितना है, यह जानने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी कुछेक आँकड़ों का उल्लेख सामयिक है। 1947 में भारत में लगभग 20 विश्वविद्यालय और 500 महाविद्यालय कार्यरत् थे। 50 वर्ष बाद 1996-97 में विश्वविद्यालयों की यह संख्या बढ़कर 232 और महाविद्यालयों की संख्या 9703 हो गई। जबकि *वर्तमान*[4] में उच्च शिक्षा का यह आँकड़ा लगभग 620 विश्वविद्यालय (जिसमें 298 राज्य विश्वविद्यालय, 130 डीम्ड विश्वविद्यालय, 44 केंद्रीय विश्वविद्यालय व 148 निजी विश्वविद्यालय शामिल हैं) व 33000 महाविद्यालय तक पहुँच गया है। इसी तरह 1972-73 में उच्च शिक्षण संस्थाओं में 21.60 लाख विद्यार्थियों का नामांकन था, जो 1996-97 में बढ़कर 67.50 लाख तथा वर्तमान में लगभग 250 लाख से भी अधिक हो गया है। जबकि 1996-97 में उच्च शिक्षण संस्थानों में लगभग 3 लाख शिक्षक तथा वर्तमान में यह आँकड़ा लगभग 10 लाख शिक्षक हो गया है।

उच्च शिक्षा में संलग्न युवा शक्ति के आकलन के लिए *18-24 वर्ष का आयुवर्ग लिया जाता है*।[5] इस आयु वर्ग वाले युवाओं का मात्र 10-12 फीसदी ही उच्च शिक्षा का लाभ प्राप्त कर पा रहे हैं। जबकि यही उच्च शिक्षा जर्मनी में 25 फीसदी, फ्रांस में लगभग 50 प्रतिशत, अमेरिका में 80 प्रतिशत तथा कनाडा में लगभग 90 फीसदी विद्यार्थियों की पहुँच में है। भारत जैसे विशाल व विश्व की दूसरी शैक्षिक व्यवस्था होने के वाबजूद महज 12 फ़ीसदी का आँकड़ा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षणिक गरीबी की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करता है। एक तरफ़ जहाँ देश में 18-24 आयुवर्ग के कुल 10-12 फीसदी छात्र ही उच्च शिक्षा में आ पा रहे हैं। तो दूसरी तरफ़ देश में लगभग 25-30 फीसदी आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त इस समस्या को लेकर दो प्रमुख कारण बताए जा रहे हैं जिसमें पहला कारण, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में घटता सरकारी व्यय तथा दूसरा, देश में मूलभूत सुविधाओं मसलन रोजी-रोटी की तलाश में भटकती हमारी आधी अबादी है। इन परिस्थितियों में देश के अंदर उच्च शिक्षा को एक ऐसी दिशा दिए जाने की आवश्यकता है कि एक तरफ़ जहाँ देश की लगभग एक तिहाई आबादी को सम्मानजनक आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर खड़ा किया जा सके तो दूसरी तरफ़ भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाकर उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों का नामांकन अन्य देशों के समान स्तर पर लाना होगा और वह भी गुणवत्ता तथा स्तर में समझौता किए बगैर।[6]

इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 2020 तक छात्रों के नामांकन दर को 30 फीसदी तक हासिल करने के लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के सुझाव पर अमल करने के लिए जहाँ देश में लगभग 1500 विश्वविद्यालय व 45000 महाविद्यालय स्थापित करनें होगे तो वहीं विश्वस्तरीय शिक्षण संस्थानों में अपनी पहचान बनाने का भी जबरदस्त दबाव होगा।[7] इसी दिशा में प्रयास करते हुए भारत सरकार ने जहाँ विदेशी वि.वि. को देश में लाने का विचार कर रही है तो वहीं पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप के आधार पर देश में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने पर बल दिया जा रहा है ताकि देश में उच्च शिक्षा की पहुँच जहाँ समाज के हरेक तबके के अधिकार में हो सके तो वहीं उच्च शिक्षा का स्तर भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर का हो। लेकिन इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए भारत सरकार उच्च शिक्षा के गुणात्मक पक्ष को कमज़ोर किये बगैर यह सब करना नहीं चाहती है।

हमारे देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में घटते शैक्षणिक दिवस तथा ज़रूरतों के हिसाब से शोध न होने की बातें हमेशा उठती रही हैं। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि इस दिशा में हमने कोई प्रयास भी नहीं किये हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार लाने हेतु समय-समय पर अनेक समितियाँ व आयोग गठित होते रहे हैं। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए यूजीसी द्वारा गठित प्रो. जे.के.ए. तरीन की अगुवाई वाली समिति ने अपनी सिफ़ारिशों में कहा कि स्थायी प्राध्यापकों को वि.वि. में हफ़्ते में कम से कम 40 घंटे और पूरे साल में 180 शैक्षिक दिन उपलब्ध रहना चाहिए।

समिति ने अपनी सिफ़ारिशों में यह भी कहा कि वि.वि. व कॉलेजों में एकसमान शिक्षक छात्र अनुपात तय करना कठिन है क्योंकि शिक्षण के विभिन्न स्तरों पर अलग-2 तरह के पाठ्यक्रम होते हैं। इसलिए तरीन कमेटी ने अपनी सिफ़ारिशों में केंद्रीय वि.वि. और डीम्ड वि.वि. में पीजी स्तर पर विज्ञान संकाय में यह अनुपात 1:10, मानविकी व सामाजिक संकाय में 1:15, वाणिज्य व प्रबंधन संकाय में 1:15 और मीडिया एवं पत्रकारिता में 1:10 होना चाहिए। जबकि स्नातक स्तर पर सामाजिक विज्ञान संकाय में 1:30, विज्ञान में 1:25, मीडिया एवं पत्रकारिता में 1:15 तथा बी.एड़. में इसे एन.सी.टी.ई. के मापदंडों के अनुसार बनाने की सिफ़ारिश की है।[8] ऐसे में गुणवत्ता लाने हेतु प्रो. तरीन कमेटी की यह सिफ़ारिशें काफ़ी अहम साबित हो सकती हैं। परंतु दूसरी तरफ़ यदि विश्वविद्यालयों में अध्यापकों की उपलब्धता पर नज़र दौड़ाई जाए तो स्थिति एकदम विपरीत नज़र आ रही है। इस दिशा में प्राप्त आँकड़ों की बात करें तो देश के अधिकांश केंद्रीय विश्वविद्यालयों में लगभग 30-40 फीसदी पद रिक्त चल रहे हैं।[9]

जबकि राज्य सरकारों द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों में भी लगभग 40-45 फीसदी पद रिक्त चल रहे हैं। इसके अलावा पिछले कुछ वर्षों में देश के अंदर खुले निजी व डीम्ड विश्वविद्यालयों की हालत इससे भी कहीं बदतर कही जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में प्रो. तरीन कमेटी की सिफ़ारिशें कैसे लागू होंगी, इस पर देश में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विरोधाभासी स्वर उठते रहे हैं।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के सर्वेक्षण के आधार पर देश की 60 प्रतिशत आबादी 25 वर्ष से कम उम्र की है, जिसमें से महज 12 फीसदी ही उच्च शिक्षा में आ पाते हैं। साथ ही हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 2.64 लाख छात्र उच्च शिक्षा हेतु विदेशों की ओर रुख करते हैं तथा प्रतिवर्ष लगभग 27,000 करोड़ रुपया खर्च करते हैं।[10] ऐसे में देश के अंदर ही उच्च शिक्षा में गुणवत्ता लाने, छात्रों के नामांकन दर को बढ़ाने तथा छात्रों के विदेशों में हो रहे पलायन को रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा विदेशी विश्वविद्यालय बिल-2010 को इस आशय के साथ संसद में लाया गया था कि जहाँ देश में नामी विदेशी विश्वविद्यालयों के यहाँ आने से उच्च शिक्षा का गुणात्मक स्तर बढ़ेगा तो वहीं देशी व विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रतिस्पर्धा की भावना भी बढ़ेगी। साथ ही हमारे युवाओं को विदेशी स्तर की उच्च शिक्षा यहीं पर उपलब्ध हो जाएगी। लेकिन देश के अंदर इस कदम को लेकर शिक्षाविदों, राजनीतिक दलों व छात्र संगठनों में परस्पर विरोधाभासी स्वर देखने को मिल रहे हैं। जहाँ शिक्षाविदों व छात्रों का कहना है कि देश के उच्च शिक्षण संस्थान जहाँ शिक्षकों, मूलभूत ढाँचे, विश्व स्तरीय सुविधाओं तथा आधुनिक तकनीकों के अभाव में विदेशी वि.वि. से पिछड़ जाएँगें जिसके कारण बेहतर सुविधाएँ जुटाने की आड़ में न केवल स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रमों को बढ़ावा मिलेगा बल्कि उच्च शिक्षा का निजीकरण व व्यापारीकरण भी बढ़ेगा। जबकि विभिन्न राजनीतिक दलों व सामाजिक संगठनों का मानना है कि देश के करोड़ों गरीब, आदिवासी व पिछड़े

क्षेत्रों से संबंध रखने वाले छात्र उच्च शिक्षा से वंचित हो जाएँगें। इस संदर्भ में, इनका यही कहना है कि एक तरफ़ जहाँ हमारी सरकार उच्च शिक्षा में घटते निवेश को बढ़ाए, वहीं उच्च शिक्षा, समाज के हरेक तबके की पहुँच में हो सके। इस संदर्भ में विभिन्न राजनीतिक दलों, छात्र संगठनों व अन्य समाजसेवी संस्थाओं का कहना है कि जहाँ हमारे देश में उच्च शिक्षा पर प्रति छात्र खर्चा 400 डॉलर है, वहीं यही खर्चा चीन में 2,728, रूस में 1,024 तथा ब्राज़ील में 3,986 यूएस डॉलर है।[11] ऐसे में अब यही प्रश्न खड़ा हो रहा है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 2020 तक 30 फीसदी छात्रों के नामांकन के लक्ष्य को गुणवत्ता व निजीकरण से समझौता किये बगैर क्या हम हाँसिल कर पाएँगें?

ऐसे में देश की सरकार ने उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी पर इस तथ्य के साथ विचार किया है कि हमारी उच्च शिक्षा मैकाले की पद्धति के कारण जहाँ गुणवत्तायुक्त शिक्षा दे पाने में विफ़ल साबित हो रही है, वहीं आज के बदलते दौर को देखते हुए उच्च शिक्षण संस्थान अपने लक्ष्य को हाँसिल नहीं कर पा रहे हैं। नतीजा जहाँ देश में उच्च शिक्षित बेरोज़गारों की फौज़ लगातार बढ़ रही है, वहीं उद्योगों को विश्व स्तरीय मानकों के अनुसार दक्ष लोगों की सप्लाई करने में हमारे उच्च शिक्षण संस्थान लगातार न केवल विफ़ल होते जा रहे हैं बल्कि उद्योगों की वर्तमान ज़रूरतों के आधार पर शोध भी नहीं करवा पा रहे हैं। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए सरकार ने इस उद्देश्य के साथ निजी शिक्षण संस्थानों की भागीदारी को बढ़ावा देने पर बल दिया है कि एक तरफ़ जहाँ देश को ऐसे स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, व्यावसायिक व तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान उपलब्ध हो सकेंगे जिनकी आज देश को नितांत आवश्यकता है साथ ही शिक्षा की लागत को कम कर सरकार के बोझ को भी कम किया जा सकेगा।

लेकिन इस संदर्भ में भी देश के शिक्षाविदों, विभिन्न राजनीतिक दलों व आम छात्रों का कहना है कि सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में कॉरपोरेट जगत से जो सहयोग की अपेक्षा की गई थी, उसमें समाजहित कम तथा व्यापारिक हित ही सर्वोपरि रहा है। इस संदर्भ में देश के आम लोगों का यह भी कहना है कि सरकार से हर तरह की सहूलियत मसलन बिजली, पानी, ज़मीन इत्यादि लेने वाले निजी शिक्षण संस्थान समाज के प्रति अपेक्षित ज़िम्मेदारी का ईमानदारी से निर्वहन नहीं करते हैं। नतीजा आज देश का गरीब, पिछड़ा व आदिवासी क्षेत्रों से ताल्लुक रखने वाला आम छात्र बेहतर शिक्षा से वंचित हो रहा है तो वहीं वर्तमान औद्योगिक ज़रूरतों के हिसाब से न तो शोध कार्य हो पा रहे हैं और न ही दक्ष लोगों की आपूर्ति हो पा रही है। इसके विपरीत देश में विभिन्न तकनीकी व व्यावसायिक नियामक संस्थाओं द्वारा उच्च शिक्षण संस्थानों पर नियमों की अनदेखी कर शिक्षण संस्थानों को चलाने की अनुमति प्रदान करने के आरोप भी लगते रहे हैं। जिसमें चाहे डीम्ड वि.वि. को चलाने की अनुमति रही हो या फिर एआईसीटीई व एमसीआई पर लगे भ्रष्टाचार के आरोप हों।[12]

ऐसी परिस्थिति में हमारे उच्च शिक्षण संस्थान विश्व स्तरीय मानकों पर कैसे खरा उतर सकेंगे तथा देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक व मात्रात्मक सुधार कैसे हो सकेगा, इसके लिए

निम्नलिखित सुझाव अहम हो सकते हैं–

1. प्रो. यशपाल समिति (Renovation and Rejuvenation of Higher Education) की सिफ़ारिशों के आधार पर विभिन्न नियामक संस्थाओं को समाप्त कर एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जानी चाहिए ताकि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार की गुंजाइश कम हो सके।
2. देश में विश्व स्तरीय गुणवत्ता की कसौटी पर अधिक से अधिक तकनीकी संस्थान जैसे–आई.टी.आई., पॉलीटैक्नीक व इंजीनियरिंग कॉलेज खोले जाएँ ताकि युवाओं को आज के संदर्भ में विश्व स्तरीय रोज़गारोंमुखी शिक्षा मिल सके।
3. देश में चल रहे सभी केंद्रीय व राज्यीय विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मानकों के तहत शिक्षकों के रिक्त पदों को प्राथमिकता के आधार पर भरा जाना चाहिए ताकि किताबी ज्ञान के साथ-साथ शोध में भी हम आगे बढ़ सकें।
4. निजी उच्च शिक्षण संस्थानों (निजी व डीम्ड विश्वविद्यालयों) में भी यू.जी.सी. द्वारा तय किये गए मापदंडों के तहत ही प्रशासनिक अधिकारियों (कुलपति, रजिस्ट्रार इत्यादि) व शिक्षकों की नियुक्तियाँ होनी चाहिए, ताकि उच्च शिक्षा का स्तर समान बना रहे।
5. विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक व शोध गतिविधियों को बढ़ावा देने हेतु प्रो. तरीन कमेटी की सिफ़ारिशों को यथावत् लागू करने पर गंभीरतापूर्वक विचार होना चाहिए।
6. निजी विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों व अन्य तकनीकी तथा व्यावसायिक संस्थानों में कम से कम 25 फीसदी सीटें आर्थिक व सामाजिक तौर पर कमज़ोर विद्यार्थियों के लिए सरकारी संस्थानों के बराबर आरक्षित करने का प्रावधान होना चाहिए ताकि उच्च शिक्षा के समान अवसर देश के सभी वर्गों को मिल सकें।
7. देश के बेहतरीन विश्वविद्यालयों व तकनीकी संस्थानों में विश्व स्तरीय आधारभूत ढाँचा विकसित कर विदेशी छात्रों को आकृष्ट कर संस्थानों की आय में वृद्धि की जानी चाहिए।
8. प्रत्येक विश्वविद्यालय व अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों में 'संस्थान विकास कोष' गठित किए जाने चाहिए ताकि जहाँ समर्थ व इच्छुक व्यक्ति स्वेच्छा से धन दे सकें और वहीं गरीब मेधावी छात्रों का खर्चा उठाया जा सके।
9. देश में उच्च शिक्षा की बढ़ती माँग को देखते हुए विश्वविद्यालय दूरवर्ती शिक्षा के माध्यम से तकनीकी व अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का संचालन गुणवत्ता से समझौता किए बगैर करें ताकि इच्छुक व्यक्ति व्यवसाय के साथ-साथ उच्च शिक्षा हाँसिल कर अपने ज्ञान व कौशल में विकास कर सकें।
10. केवल उन्हीं विदेशी विश्वविद्यालयों को देश में आने की इजाज़त मिलनी चाहिए जो अपने देश में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा के लिए विख्यात हों। साथ ही ऐसे पाठ्यक्रम चलाने की अनुमति दी जानी चाहिए जो वर्तमान समाजिक व वैश्विक ज़रूरतों को पूरा करते हों।
11. आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार देखने को मिल रहा है, जिसमें उच्च शिक्षित

लोगों की भागीदारी चिंतनीय है। ऐसे में भारतीय समाज व यहाँ की संस्कृति तथा परंपराओं का विभिन्न व्यावसायिक व तकनीकी पाठ्यक्रमों के साथ आवश्यक तौर पर समावेशन करना होगा ताकि हमारी नौजवान पीढ़ी वैश्विक ज्ञान के साथ-साथ अपने समाज, संस्कृति, इतिहास, नैतिकता, मूल्यों तथा यहाँ की लोक परंपराओं को भी जाने व उनको, अपने सार्वजनिक व निजी जीवन में उपयोग में लाएँ।

संदर्भ

हिंदी

1. घूमन, बी.एस. 2010. ''करप्शन इन एजुकेशन'', द *ट्रिब्यून*, चंडीगढ, मार्च 07, 2010.
2. पाण्डेय, कल्पलता. 2002. ''भारत में उच्च शिक्षा–निजी क्षेत्र की भूमिका'', *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* जुलाई, पृ. 41-47.
3. पानागरिया, अरविंद. 2010. ''पर्स्यूइंग एक्सीलेंस एंड इक्विटी'', द *टाइम्स ऑफ़ इंडिया,* नयी दिल्ली/चंडीगढ़, अप्रैल 10, 2010.
4. यादव, अशोक कुमार. 2010. ''फॉरेन यूनीवर्सिटी विल बेनीफ़िट इंडिया'', द *ट्रिब्यून,* चंडीगढ़, फ़रवरी 07, 2010.
5. राष्ट्रीय संग्रहालय. 2001. *शैक्षणिक सुधार.* राष्ट्रीय संगोष्ठी की रिपोर्ट, नयी दिल्ली, 14-15 मार्च.
6. सिंह, जे. पी. 2003. *''इक्कीसवीं सदी का भारत और शिक्षा संकट–एक अवलोकन'', कुरुक्षेत्र,* सितंबर, पृ. 7-10.
7. सिंह, शैलजा. 2001. ''उच्च शिक्षा का वाणिज्यीकरण'', *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* अक्तूबर, पृ. 31-34.
8. सिंह, सुनील कुमार. 2001. ''भारतीय उच्च शिक्षा–संसाधनों की कमी और वाणिज्यीकरण'', *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* अप्रैल, पृ. 42-45.

अंग्रेज़ी

9. Govt. of India. 2008. *Towars a Knowledge Society*. National Knowledge Commission Report, 2008, New Delhi.
10. Grewal, R.S. **"*Making Higher Education Industry Relevant*".** *The Tribune,* Chandigarh, June 18, 2013.
11. Recommendations of Prof. J.K.A.Taren; UGC constituted committee on Higher Education.
12. Recommendations of Prof. Yashpal Committee report (**Renovation and Rejuvenation of Higher Education;** first intrim report published on 1st march, 2009 and final report published on 25th June, 2009).

परिषद् की 'भारतीय आधुनिक शिक्षा' एवं 'प्राथमिक शिक्षक' त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उपरोक्त दो त्रैमासिक पत्रिकाएँ शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुँचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हो। शैक्षिक उपयोगिता से ये पत्रिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषयवस्तु 2500 से 3000 शब्दों में या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। यदि लेखक अपने लेखों के साथ सीडी और स्वयं का ई. मेल का पता भेज सकें तो सुविधा होगी। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें –

विभागाध्यक्ष (पत्रिका प्रकोष्ठ), प्रकाशन प्रभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा श्री वृंदावन ग्राफ़िक्स प्रा. लि., ई-34, सैक्टर-7, नोएडा 201301 (उ. प्र.) द्वारा मुद्रित।

रजि. नं. 42912/84

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING